कौल-कल्पतरु

चण्डी

वर्ष ५९ रसेश्वरी राधा एवं सोम-रस-मूर्त्ति श्रीकृष्णचन्द्र अङ्क ४

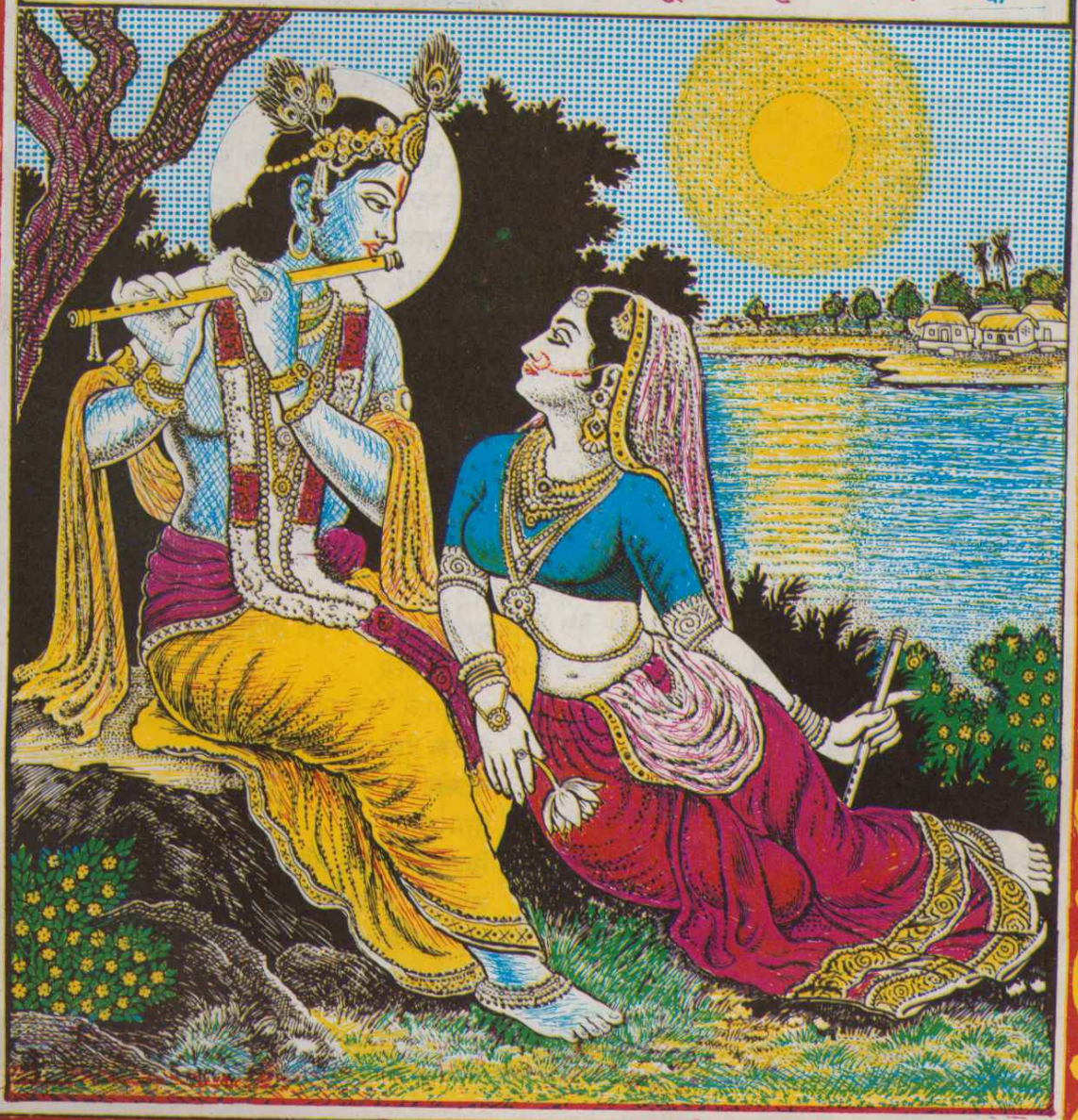

परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान द्वारा प्रचारित उपयोगी प्रकाशन

परशुराम तन्त्र ३)

प्राण-तोषिणी तन्त्र [सर्ग, धर्म-काण्ड] ५०)

बगला-कल्पतरु ७५)

बगला-नित्यार्चन यन्त्रस्थ

बगला-पूजा-पद्धति [वैदिक] ५)

बगला-सहस्त्र-नाम-साधना ६)

बाला-नित्यार्चन २५)

बाला-स्तव-मञ्जरी २०)

बाला-खड्ग-माला १५)

बाला-कल्पतरु १५)

भगवती बाला का स्वरूप एवं साधना-क्रम।

बदरी-विशाल-वल्लभा ५)

बाबाश्री चरितामृत ३०)

प०पू० बाबाश्री मोतीलाल जी मेहता का जीवन-चरित एवं उनकी दुर्लभ रचनाएँ।

बिहार में शक्ति-साधना १०)

बिहार के शक्ति-साधकों पर प्रामाणिक सामग्री।

बिहार के देवी-मन्दिर ८)

भगवती शतक ५)

भक्ति-योग ४)

भगवती गीता १५)

भगवती मानस-पूजा-स्तोत्र १०)

श्रीशङ्कराचार्य विरचित हिन्दी अर्थ सहित, पद्यानुवाद।

भागवत धर्म का प्राचीन इतिहास १५)

भुवनेश्वरी रहस्य ६०)

भुवनेश्वरी-स्तव-मञ्जरी १५)

भैरवी-चक्र-पूजन ६)

मन्त्र-कल्पतरु २०)

मन्त्र-शास्त्र-विषयक उपयोगी निबन्ध-संग्रह।

मन्त्र-सिद्धि का उपाय ६)

मन्त्र-कोष १२५)

भगवान् गणेश, सूर्य, शिव, विष्णु एवं दश-महा-विद्या आदि के विभिन्न मन्त्रों का प्रामाणिक संग्रह।

मन्त्रात्मक-सप्तशती [सजिल्द] यन्त्रस्थ

सप्तशती के ७०० मन्त्रों के गुप्त विधान।

महा-चीनाचार-सार-तन्त्र ६)

महा-राज्ञी-सहस्त्र-नाम ६)

महा-विद्या-स्तोत्र ५)

मानस के सिद्ध स्तोत्र १०)

मुद्राएँ एवं उपचार (सचित्र) १५)

मुमुक्षु मार्ग, भाग १ १५)

मन्त्र-शास्त्र-विषयक रहस्योद्घाटन।

मुमुक्षु मार्ग, भाग २ ४०)

तत्त्व-दर्शन, ईश्वर की प्राप्ति क्या-क्यों-कैसे?

महा-शक्ति-पीठ विन्ध्याचल १२)

प्रामाणिक माहात्म्य एवं पूजा-विधि सहित।

मन्त्र-योग ५)

राज-योग ४)

ललिता पीठ-प्रयाग ४)

लेख-संग्रह—स्वामी दिव्यानन्द जी ५)

लघु चण्डी १०)

महर्षि वेद-व्यास कृत श्रीदुर्गा सप्तशती।

वन्दे मातरम् ५)

महा-मन्त्र 'वन्दे मातरम्' की महिमा।

वैदिक देवी-पूजा पद्धति ५)

वाञ्छा-कल्प-लता [सविधि] ८)

वाम-मार्ग ३०)

विशुद्ध चण्डी [श्रीदुर्गा-सप्तशती] २०)

छपी हुई 'सप्तशती' में अनेक अशुद्धियों को देखकर यह शुद्ध संस्करण प्रकाशित किया गया है।

विज्ञान-योग ५)

कल्याण मन्दिर प्रकाशन, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-राज (उ० प्र०) ☎ : ५०२७८३

'पीताम्बरा-पीठ', दतिया
के
प्रकाशन

- काम-कला-विलास १५/-
- गुरु-तत्त्व एवं गुरु-पादुका-पंचक २०/-
- घेरण्ड संहिता १५/-
- ज्योतिष-तत्त्व-विवेक १२०/-
- धूमावती सपर्यार्णव २०/-
- निगमागम समन्वय २०/-
- श्रीबगलामुखी रहस्यम् ६०/-
- भैरव विज्ञान २५/-
- मातृका-चक्र-विवेक ४५/-
- महा-विद्या-चतुष्टय १५/-
- महा-त्रिपुर-सुन्दरी पूजा २०/-
- योग विज्ञान ३०/-
- रेणुका तन्त्र १५/-
- त्रिपुरा-महिम्ना-स्तोत्र ११/-
- श्रीललिता सहस्र-नाम (भास्कर राय संस्कृत टीका) ४०/-
- लघु-स्तव-राज २०/-

: पुस्तक-प्राप्ति-स्थान :

कल्याण मन्दिर प्रकाशन
अलोपी देवी मार्ग, प्रयाग-राज
दूरभाष (०५३२) ५०२७८३

'कौल-कल्पतरु' चण्डी

आषाढ़, 'विजय' सं० २०५७ वि०-जुलाई, २००० 'रास-प्रकरण'-अङ्क

इस अङ्क में

- 'रास-लीला'-रूपी विज्ञान १२२
- समूल 'हृद-रोग'-नाशक—'रास-प्रकरण' १२३
- श्रीराधा-षड्क्षर-मन्त्र-साधना १३६
- साधक का संवाद १४१
- मन्त्र-मातृका-पुष्प-माला-स्तोत्र १४६
- अमोघ लघु प्रयोग १४६
- 'अजपा-जप'-साधना का रहस्य १४७

'सूचना'

'श्रीगायत्री कल्पतरु'—दूसरा विशेषाङ्क

☆ 'चण्डी' वर्ष ५६ का दूसरा विशेषाङ्क, **'श्रीगायत्री कल्पतरु'**— विशेषाङ्क-योजना के सदस्यों को भेजा जा रहा है। जो बन्धु विशेषाङ्क योजना के सदस्य नहीं है, वे चाहें तो रियायती मूल्य पर प्राप्त कर सकते हैं। कृपया लिखें।

☆ **'चण्डी'** वर्ष ५६, अङ्क ६ - **सितम्बर, २०००** सभी सदस्यों की सेवा में १८-२० सितम्बर, २००० को भेजा जाएगा।

☆ **'चण्डी'** वर्ष ५६, अङ्क ६ - **सितम्बर, २००० 'शारदीय नवरात्र अङ्क'** होगा।

☆ **'चण्डी'** वर्ष ५६, अङ्क ६ - **सितम्बर,** २००० उन सभी सदस्यों की सेवा में **वार्षिक अनुदान की दूसरी किश्त ५०-०० की वी०पी०पी०** द्वारा भेजा जाएगा, जिन्होंने वर्ष ५६ के लिए पूरा वार्षिक अनुदान १२०-०० नहीं भेजा है। इस दूसरी वी०पी०पी० द्वारा ऐसे बन्धुओं का 'चण्डी' वर्ष ५६ हेतु १००-०० रु० जमा हो जाएगा। अनुदान के शेष २०-०० रु० **तीसरी वी०पी०पी०** द्वारा आगे **दिसम्बर,** २००० में लिए जाएँगे।

—ऋतशील शर्मा

'रास-लीला'-रूपी विज्ञान

❖ श्रीऋतशील शर्मा, श्रीचण्डी-धाम, प्रयाग-राज (उ०प्र०)

'चण्डी' वर्ष ५६ के पहले अङ्क में **'राम'-नाम-रूपी विज्ञान** प्रस्तुत हुआ था। अब यहाँ प्रस्तुत चौथे अङ्क द्वारा पाठकों का ध्यान **'रास-लीला'-रूपी विज्ञान** के प्रति आकर्षित किया जा रहा है। इस विज्ञान को बतानेवाले हैं—**वेद-वीथि-पथिक पण्डित मोतीलाल जी शर्मा।**

पण्डित मोतीलाल जी शर्मा—भारत की उन **महान् विभूतियों** में से एक हैं, जिन्हें हमारे राष्ट्र ने आधुनिकता की अन्धी दौड़ में फँसकर पूरी तरह से विस्मृत कर रखा है। ऐसी **विभूतियों के कृतित्व** पर उचित ध्यान न देने का ही यह दुष्परिणाम है कि हम लोग **आत्म-घातक सांस्कृतिक दरिद्रता** के चंगुल में फँसते जा रहे हैं। इस दरिद्रता से मुक्ति प्राप्त करने के लिए हमें अब ऐसे लोगों के **'कृतित्व'** की शरण में जाना ही होगा! ऐसा नहीं है कि हमारे देश के कर्ण-धारों में आप जैसे **महान् चिन्तकों** की प्रतिष्ठा के प्रति कभी चिन्ता न थी। चिन्ता थी और कुछ प्रयास भी हुए थे किन्तु पश्चिम की चकाचौंध के पीछे ऐसे प्रयास **स्थायी रूप** को प्राप्त न हो सके।

'रास-प्रकरण' के व्याख्याता पं० मोतीलाल जी, डा० राजेन्द्र प्रसाद एवं डा० वासुदेव शरण अग्रवाल

उदाहरण के रूप में हमारे पास **राष्ट्रपति-भवन, नई दिल्ली** में **सन् १९५६** में सम्पन्न—**'सांस्कृतिक-व्याख्यान-पञ्चक'**- नामक एक रिपोर्ट - दस्तावेज है। उक्त रिपोर्ट के अनुसार यह व्याख्यान-समारोह **महा-महिम राष्ट्र-पति श्रीराजेन्द्र प्रसाद जी** की उपस्थिति में १४.१२.५६ से १८.१२.५६ तक के पाँच दिनों में सम्पन्न हुआ था। **पण्डित मोतीलाल जी शर्मा** ने ही इसमें **पाँच व्याख्यान** दिए थे। पाँचवें दिन **'रास-प्रकरण'** पर आपका व्याख्यान हुआ था। यह व्याख्यान क्या है —अपने-आप में **'ज्ञान-विज्ञान' का अद्भुत 'रहस्योद्घाटन'** है।

देश के **प्रथम 'राष्ट्र-पति' डा० राजेन्द्र प्रसाद** ने समारोह की समाप्ति पर यह कहा था कि—**'...मेरी इच्छा है कि शास्त्र की यह परम्परा (अर्थात् रहस्योद्घाटन) आगे चलनी चाहिए। ऐसा प्रबन्ध करना आवश्यक है कि यह परम्परा आगे बढ़े।....'**

स्पष्ट है कि **'राष्ट्रपति जी'** की इच्छा होते हुए भी ऐसा न हो सका! **'चण्डी'** ऐसी परम्परा के प्रति कृत सङ्कल्प रही है और रहेगी। अस्तु! **पण्डित मोतीलाल जी** का उक्त व्याख्यान कुछ सम्पादित कर आगे १६ पृष्ठों में **'रास-प्रकरण'**-शीर्षक से प्रस्तुत है।

* * *

॥ योग-भोग-स्वरूपों से समन्वित ॥

❀ सर्व-समन्वयात्मक, पूर्ण-भावात्मक ❀

समूल हृद्-रोग-नाशक —'रास'-प्रकरण

'श्रीमद्-भागवत' में भगवान् के योगेश्वर—भोगेश्वर, दोनों ही स्वरूपों का निरूपण हुआ है। **श्रीमद्-भागवत** के दशम स्कन्ध में **'रास-पञ्चाध्यायी'**-प्रकरण में बाह्य दृष्टि से जहाँ भगवान् के **'भोगेश्वर'-स्वरूप** का प्राधान्य प्रतीत होता है, वहीं सूक्ष्म-दृष्ट्या **'रास-चरित' भगवान्** के आत्म-बुद्धि-निबन्धन **'योगेश्वर'-स्वरूप** की ओर भी हमारा ध्यान आकर्षित होता है। **'रास-पञ्चाध्यायी'** के **'आत्मन्यवरुद्ध-सौरतः', 'आत्मारामोऽप्यरीरमत्', 'यथार्भकः स्व-प्रतिबिम्ब-विभ्रमः'**— इत्यादि पद्यांशों से उक्त तथ्य स्पष्टतया प्रति-ध्वनित होता है।

सम्पूर्ण भागवत में **'रास-पञ्चाध्यायी'** ही एक-मात्र ऐसा अद्भुत प्रकरण है, जिसमें **भगवान् के योग-भोगात्मक—दोनों स्वरूपों का लोकोत्तर समन्वय** हुआ है और जिसके स्मरण मात्र से ही लौकिकी स्वल्प-प्रज्ञा सर्वात्मका आत्म-विस्मृति बन जाती है। अतएव आइए! **भगवान् के योग-भोग-स्वरूपों से समन्वित, पूर्ण-भावात्मक 'रास-प्रकरण'** के कुछ एक मूल संस्मरणों के मनन-निदिध्यासन से सम्मिलित ऐतिहासिक वातावरण में अपने आपको धन्य बना लेने का महद् भाग्य प्राप्त करें!

सुनते हैं, **विश्व-विजयी मदोन्मत्त रति-पति** ने जब यह सुना कि **'व्रज'** में कोई ऐसी शक्ति प्रादुर्भूत हुई है, जिसने **ब्रह्मेन्द्रादि देवताओं का दर्प-दलन** कर अपने आपको **पूर्ण विजयी—पूर्णावतार** प्रमाणित कर दिया है, तो वे विक्षुब्ध हो पड़े एवं परीक्षण के लिए एक दिन **भगवान् कृष्ण** के सम्मुख सहसा उपस्थित हुए। भगवान् ने भी **दर्प-मदोन्मत्त कामदेव** महानुभाव का अपने सहज मन्द-स्मित भाव से स्वागत किया। शिष्टाचार पूर्ण होते ही अपने स्वभाव से ही **भय-लज्जा-शिष्टता-नम्रता-शील-विवेक**-आदि बौद्धिक सद्-गुणों को दूर से ही प्रणामाञ्जलि समर्पित करने में परम चतुर एवं **भगवान् की आत्म-बुद्धि-निबन्धना भगवत्ता** से सदा से ही अपरिचित बने रहनेवाले केवल **मनो-जीवी अति-मानी मनोज देव** भगवान् को लक्ष्य बनाकर कहने लगे—

''...हमने सुना है—आप पूर्णावतार हैं। आपको यह स्मरण दिलाने आया हूँ कि आज तक मुझ काम-देवता को त्रैलोक्य में कोई भी परास्त नहीं कर सका है। जब तक आप अमुक सन्ध्याओं (अर्थात् शर्तों) **के माध्यम से युद्ध में हमें पराजित नहीं कर लेते, तब तक मैं आपको पूर्णावतार कदापि नहीं मान सकता। बोलिए, शीघ्र उत्तर दीजिए! क्या आपको हमारा यह रण-निमन्त्रण स्वीकार है?.....''**

काम-देव के उक्त **रण-निमन्त्रण** को जब **अन्तर्योग-निष्ठ, बहिर्भोग-परायण, सर्वैश्वर्य-परिपूर्ण भगवान्** ने गज-निमीलिका-दृष्टि से देखा और उपेक्षा-पूर्वक ही मानों सुना भी, तब स्वयं **काम-देव** की ओर से ही ये सन्ध्याएँ-शर्तें भी निर्द्धारित हो गईं कि—

(१) युद्ध का समय वह रहेगा, जिसमें एक-मात्र **काम-देव** का ही प्राकृतिक बल सुविकसित रहता है। अर्थात् **शरद्-ऋतु** की शुभ्रा निर्म्मला ज्योत्स्नाएँ ही युद्ध -काल माना जाएगा।

(२) युद्ध में **भगवान्** किसी भी प्रकार के दुर्ग का आश्रय न ले सकेंगे। युद्ध सर्वथा निरावरण प्रान्त में— खुले मैदान में ही होगा।

(३) युद्ध में **कामदेव** तो सब प्रकार के अस्त्रों-शस्त्रों का स्वच्छन्दता से उपयोग करेंगे, जबकि **भगवान्** किसी भी प्रकार के शस्त्रास्त्र का स्मरण भी न कर सकेंगे।

(४) आवश्यकता पड़ने पर **कामदेव** तो इच्छानुरूप शस्त्रास्त्रों से पूर्ण-रूपेण सुसज्जित प्रबल सैन्य-बल का भी यथा-अवसर आमन्त्रण कर सकेंगे, जबकि **भगवान्** सेना-बल से सर्वथा असंस्पृष्ट ही रहेंगे।

इस प्रकार एक-पक्षीय सन्ध्याओं-शर्तों की स्वीकृति पर जब दोनों का मुद्राङ्कन हो गया तथा दोनों ही योद्धाओं के निर्धारित उपयुक्त युद्ध-समय तक के लिए स्व-स्व-स्थानों की ओर परावर्त्तित होते ही क्या हुआ? सुनिए, **महा-भागवत** में वर्णित स्वयं **श्री शुकमुनि** के ही मुखारविन्द से—

भगवानपि 'ता रात्री:', शरदोत्फुल्ल-मल्लिका:। वीक्ष्य रन्तुं मनश्चक्रे, योग-मायामुपाश्रित:॥

अर्थात् हे परीक्षित! जिन रात्रियों में मल्लिका-पुष्प सुविकसित रहते हैं, उन शरद्-ऋतु की निर्मल रात्रियों को आया देखकर **योग-माया से समन्वित महा-मायावच्छिन्न भगवान्** ने भी रमण करने की कामना प्रकट की।

यह है उक्त **शुक-वचन** का अक्षरार्थ। ध्यान दीजिए! '**ता रात्री:**'-शब्दों पर, अर्थात् उन रात्रियों को। किन रात्रियों को? जिनके लिए **भगवान्** किसी समय **कामदेव** के साथ प्रतिज्ञात बने थे।

यहाँ यह स्मरण रहना चाहिए कि **पुराणों** में प्रत्येक शब्द-प्रत्येक वाक्य अपनी एक रहस्य-पूर्ण व्यञ्जना रखता है, जिसके लिए **पुराण-शास्त्र** का भी **वेद-शास्त्र**-वत् ऐकान्तिक चिन्तन अपेक्षित है। सामयिक कथाओं के द्वारा रहस्यों का स्पष्टीकरण सम्भव नहीं है। उदाहरण के लिए उक्त श्लोक के '**मल्लिका**'-शब्द को ही लीजिए। लोक-भाषा में जिसे '**बेला**'—'**मोगरा**' कहा जाता है, वही संस्कृत-साहित्य में '**मल्लिका**' कहलाया है। **पुराण-शास्त्र** ने तो इस '**मल्लिका**' के स्वरूप-निरूपण के लिए एक स्वतन्त्र आख्यान ही व्यवस्थित किया है। देखिए, '**वामन पुराण**' का अध्याय ६। वहाँ कहा गया है कि जब **कामदेव—भगवान् शङ्कर** पर प्रहार करने के लिए इतस्तत: घूमते हुए **भगवान् शङ्कर** को अपना लक्ष्य बना रहे थे, तो सहसा उनके तृतीय नेत्र से **कामदेव** भस्म होने लगे। सर्व-प्रथम **कामदेव** का शस्त्र ही जलने लगा। जलता हुआ वही शर पाँच प्रकार के वृक्ष-रूपों में परिणत हुआ। शर का जो सर्व-श्रेष्ठ विद्रुम-मणि विभूषित ऊर्ध्व भाग था, वही '**मल्लिका**'-पुष्प-रूप में परिणत हुआ।

इसीलिए भारतीय कवियों ने '**मल्लिका**' को **पञ्च-सायक— कामदेव** का ही पुष्प माना है। अत: भागवत-कार का '**शरदोत्फुल्ल-मल्लिका:**'-वाक्य **काम-शक्ति-प्रसार** की ही सूचना देता है। यहाँ इस सम्बन्ध में एक महत्त्व-पूर्ण प्रश्न भी होता है कि छहों ऋतुओं में **बसन्त ऋतु** ही **काम-देवानुरूपा ऋतु** मानी गई है, फिर भागवत-कार ने **शरद्-ऋतु** को **कामदेव** के अनुरूप समय कैसे और क्यों बतलाया है?

उक्त प्रश्न का समाधान अत्यन्त सूक्ष्म तत्त्व-वाद— **वैदिक नाक्षत्रिक रास** से सम्बद्ध है, जिसका यहाँ संक्षिप्त दिग्दर्शन भी सम्भव नहीं है। कुतूहल के शमन के लिए दो शब्दों में यही निवेदन है कि **भगवान् कृष्ण—पूर्णावतार** हैं, जिसका अर्थ है विश्वेश्वर में जितनी भी पूर्ण विभूतियाँ हैं, सबका इस अवतार-पुरुष में अवतरण हुआ है। **'स्वयम्भू-परमेष्ठी-सूर्य-भूपिण्ड-चन्द्रमा'**—इन पाँचों विश्व-पर्वों के शक्ति-गुण-धर्म सर्वात्मना-पूर्ण रूप से **भगवान् कृष्ण** में व्यक्त हुए हैं। यही इनका **'पूर्णावतारत्व'** है। इन **विश्व-धर्मों में से भगवान् की रास-क्रीड़ा** का सम्बन्ध प्रधान रूप से **'चान्द्र पर्व'** से ही है। उसी रहस्य के सम्बन्ध में यहाँ दो शब्द निवेदन करना है।

'ब्रह्मा कृष्णश्च नोऽवतु'— इत्यादि यजुर्वेद-मन्त्रानुसार **'चन्द्रमा'**—**'प्राकृतिक नित्य-यज्ञ के ब्रह्मा'** माने गए हैं एवं ये अपने स्वरूप से सर्वथा **'कृष्ण'** हैं। **'चन्द्रमा'** में आप जो प्रकाश देखते हैं, वह तो सूर्य-रश्मियों का प्रतिफलन-मात्र है। जैसा कि —**'अत्राह गोरमन्वत नाम त्वष्टुरपीच्यम्। इत्था चन्द्रमसो गृहे।'** (ऋक्-संहिता) इत्यादि श्रुति से स्पष्ट है।

'तरणि-किरण-सङ्गादेष-पानीय-पिण्डो-दिनकरि-दिशि चञ्चच्चान्द्रिकाभिश्चकास्ते' प्रसिद्ध ही है। हाँ, तो **'चन्द्रमा'**— **'कृष्ण'** हैं और यही हैं— **अधि-दैवत-मण्डल के रास-बिहारी 'कृष्णचन्द्र'**, किन्तु, **'राधा'** के बिना **'रास'** कैसा? **'राधा'** हैं **'वृष-भानु'** की पुत्री। **'वृष-भानु'** कौन हैं और **'आधि-दैविक रास'** में वे कहाँ हैं? इसके लिए **नक्षत्र-विद्या** के माध्यम से अन्वेषण कीजिए।

कान्ति-वृत्त-मण्डल में **अश्विनी-नक्षत्र** से प्रारम्भ कर **रेवती-नक्षत्र** पर्यन्त **२७ प्रधान नक्षत्र** माने गए हैं। इनमें **९-९-९ नक्षत्रों के तीन खण्ड** प्रसिद्ध हैं। सत्ताइस प्रधान नक्षत्रों में एक नक्षत्र का नाम है—**'विशाखा नक्षत्र'**। इसे ही **'राधा'** भी कहा गया है, जैसा कि **'राधा-विशाखा-पुष्ये तु'**— इत्यादि वचन से स्पष्ट है। इसे **'राधा'** क्यों कहा गया है? **'राधा'** का तात्पर्य है—**विश्व की व्यक्त-भूत्-सम्पत्ति,** जिसकी उपलब्धि के **'पृथिवी'** अर्थात् **'भूगोल'** एवं **'सूर्य'** अर्थात् **'खगोल'**—ये दो ही प्रधान अवलम्ब हैं। **'पृथ्वी'** के प्राण-देवता **'अग्नि'** हैं, **'सूर्य'** के प्राण-देवता **'इन्द्र'** हैं, जैसा कि —**'यथाग्नि-गर्भा पृथिवी'** तथा **'द्यौरिन्द्रेण गर्भिणी'** इत्यादि वचनों से प्रमाणित है। **'द्यावा-पृथिवी'** की सम्पत्ति के अधिष्ठाता **'इन्द्राग्नी'** ही **'विशाखा'-नक्षत्र** में उक्थ-रूप से प्रतिष्ठित हैं। अतएव ज्योतिष-शास्त्र ने नक्षत्रों की देव-गणना में **'इन्द्राग्नी'** को **विशाखा के देवता** माना है।

इस प्रकार **'विशाखा'-नक्षत्र— सर्व-भूत-सम्पत्-प्रवृत्ति का केन्द्र** बनता हुआ अवश्य ही **'राधा'- नक्षत्र** है। तभी तो इससे आगे का नक्षत्र **'अनुराधा'**- नक्षत्र कहलाता है। मध्य में **'विशाखा'**- नक्षत्र-रूप **'राधा'**-नक्षत्र एवं इसके पूर्व-पार्श्व में **'उत्तरा फाल्गुनी-हस्त-चित्रा-स्वाती'**— ये चार उप-नक्षत्र तथा उत्तर -पार्श्व में **'अनुराधा-ज्येष्ठा-मूल-पूर्वाषाढ़'**— ये चार नक्षत्र, इस प्रकार ९ नक्षत्रों का एक स्वतन्त्र **नक्षत्र -खण्ड—मण्डल** माना जाता है, जिसके मध्य में केन्द्र-रूप से **'विशाखा-रूप राधा'** प्रतिष्ठित है।

शरद्-ऋतु के **कृष्ण चन्द्र** एवं इसी ऋतु के **वृष-राशि के सूर्य** के सन्मुख उक्त ९ नक्षत्र पड़ते हैं और ९ नक्षत्रों में **विशाखा-नक्षत्र** ठीक सामने पड़ता है। **'पश्यन्ति सप्तमं सर्वे, शनि-जीव-कुजाः पुनः'**— इस पाराशर-सिद्धान्तानुसार सम्मुख अवस्थित **विशाखा-नक्षत्र** के साथ **वृष के सूर्य** के तेज का अर्थात् **'वृष-भानु'** के तेज का सीधा सम्बन्ध होता है और इस प्रकार यह **'राधा'**— **'वृष-भानु-सुता'** बनती है, जिसके साथ **शरच्चन्द्र-रूप कृष्ण-चन्द्र** रास-विहार करते हैं। जिस प्रकार **श्रीकृष्ण** के **श्रीदामादि आठ सखा** प्रसिद्ध हैं, उसी प्रकार **श्रीराधा**

की भी **आठ प्रमुख सखियाँ** प्रसिद्ध हैं। **राधा** के पार्श्व-वर्त्ती ८ **उप-नक्षत्र** ही **प्रधान आठ सखियाँ** हैं। **शरद्-ऋतु** में **नक्षत्र-रूप** इन्हीं **गोपी-मण्डल** के साथ **श्रीकृष्ण रास-मण्डलाध्यक्ष** बनते हैं, जिनका **तात्त्विक रास—विश्व-रास, अयन-रास, संवत्सर-रास, मासिक रास, अहोरात्र-रास** आदि-आदि भेद से अनेक भावों में विभक्त है। **रासावास-निवासिनी रसेश्वरी राधा** के साथ **सोम-रस-मूर्त्ति कृष्णचन्द्र** के इसी **सांवत्सरिक रास** से रथान्तर-सामात्मिका **महा-पृथिवी** के महिमा-मण्डल में प्रतिष्ठित **१ दधि, २ घृत, ३ मधु, ४ इक्षु** आदि **सातों रसों का भू-लोक पर अनवरत वर्षण** होता रहता है।

'पुराण' ने **सात समुद्र** माने हैं। क्या यह केवल कल्पना है? नहीं! तो कहाँ हैं— **घी-दूध-शहद के समुद्र?** आज तक **भूगोल-वेत्ताओं** को ये कहीं मिले नहीं हैं। वास्तव में आधुनिक वैज्ञानिकों ने भूगोल तो देखा है, किन्तु अभी उनका भूत-विज्ञान **मण्डल -रूपा पृथिवी** को ही पहचान नहीं सका है, जो **भू-केन्द्र** से आरम्भ कर **सूर्य** स भी कुछ ऊपर तक व्याप्त है।

भारतीय वैज्ञानिकों ने **सप्त-दश-स्तोम** के माध्यम से **दो अण्ड-कटाह** माने हैं। **पुराणों** के अनुसार **सप्त द्वीप**— जिनका अनन्त विस्तार है, **सातों रस-समुद्र, ४९ वायु-स्तर** आदि-आदि सब कुछ **पृथ्वी-मण्डल** में ही है। यह **पार्थिव मण्डल** अपने रथान्तर साम के २१ वें अहर्गण द्वारा **सूर्य** को भी अपने गर्भ में लिए हुए है। **पृथ्वी** पर सभी **रसों का वर्षण—चान्द्र-रस** द्वारा होता है। **चान्द्र रस** का उपक्रम-बिन्दु—**'शरद-ऋतु'** बनती है। इसीलिए हमारे यहाँ यह वर्णित है कि **रसेश्वर चान्द्र तत्त्व** के भी प्रतीक **भगवान् कृष्णचन्द्र** स्व-प्रकृति-भूत **शरत्-काल** में **'रास का उपक्रम'** करते हैं। **शरद्-ऋतु** जहाँ **रसेश्वर भगवान् कृष्ण** के **आधि-दैविक प्रकृति-भाव** का संग्राहक है, वहीं **उत्फुल्ल-मल्लिका** के द्वारा स्वयं **कामदेव** से अनुगत काल का भी संग्राहक है। दूसरे शब्दों में, अपने **मनो-मय मनोज, स्व-काम-शक्ति** को परास्त करने के लिए **भगवान् नन्द-नन्दन** शरद्-यामिनियों में इस भू-तल पर **रास** के लिए अवतीर्ण होते हैं और नभो-मण्डल में इनके प्रकृति-रूप **आकाश-बिहारी उडु-पति चन्द्रदेव** भी **रास** के लिए प्रवृत्त होते हैं।

उक्त **आधि-दैविक** एवं **आधि-भौतिक सम-तुलन** को **महा-मुनि शुकदेव** अपनी रहस्य-पूर्णा सङ्केत-भाषा के माध्यम से इस प्रकार कहते हैं—

तदोडुराजः ककुभः करैर्मुखं, प्राच्या विलिम्पन्नरुणेन शन्तमैः।
स चर्षणीनामुदगाच्छुचो मृजन्, प्रियः प्रियाया इव दीर्घ-दर्शनः॥

आगे क्या हुआ? सुनिए—

दृष्ट्वा कुमुद्-वन्तमखण्ड-मण्डलं, रमाननाभं नव-कुंकुमारुणम्।
वनं च तत्-कोमलं वीक्ष्य रञ्जितं, जगौ कलं वाम-दृशां मनोहरम्॥

अर्थात् **कुंकुम-वर्ण, अखण्ड-मण्डलाकार, स्व-प्रकृति-भूत चन्द्रदेव** को नभो-मण्डल में उदित देखकर एवं **कोमल-स्निग्ध-चान्द्र-रश्मियों** से तथा-विध बने हुए **यमुना-तट** को लक्ष्य बनाकर वामाङ्गनाओं के मन को हरण करनेवाले **भगवान्** ने **वंशी-निनाद** का उपक्रम किया। **वंशी-वादन** के माध्यम से मानों **भगवान्** ने प्रतिज्ञात समय में **कामदेव का आह्वान** किया अर्थात् **युद्ध के लिए ललकारा**। तत्काल **काम-देव** उपस्थित हुए और कहने

लगे— 'क्या! आरम्भ में ही सन्ध्या-शर्त का अतिक्रमण? आपने तो कहा था कि हम किसी प्रकार के शस्त्र का ग्रहण न करेंगे? फिर सन्ध्या के विपरीत वंशी-रूप शस्त्र-ग्रहण एवं वाम-लोचनाओं का मूक आमन्त्रण-रूप सैन्य-संग्रह क्या ठीक माना जाएगा?

अब्रह्मण्यम्! अब्रह्मण्यम्!! सचमुच **कामदेव अनङ्ग** होने के साथ-साथ **अन्ध** भी हैं। तभी तो स्वयं अपनी स्थिति का भी इन्हें ध्यान नहीं रहा। सङ्गीत-भाव-प्रवर्त्तिका वंशी क्या भगवान् का शस्त्र है? **वाम-लोचनाएँ** क्या भगवान् की सेना है? नहीं! यह **सङ्गीत**, ये **वाम-लोचनाएँ** तो—**कामदेव के ही शस्त्र तथा सैन्य-बल** माने गए हैं? **सङ्गीत** तो **अनङ्ग का ही बल-वर्द्धक** है। **वामाङ्गनाएँ** तो **कामदेव की ही सेना** हैं। **भगवान्** तो **वंशी-वादन** के द्वारा **व्रज-गोपियों का आमन्त्रण** करते हुए स्वयं **कामदेव को अपनी ओर से शस्त्र-सैन्य-बल प्रदान** कर रहे हैं। इसी भाव का निरूपण करते हुए **शुक मुनि** कहते हैं—

निशम्य गीतं 'तदनङ्ग-वर्द्धनं',
व्रज-स्त्रियः कृष्ण-गृहीत-मानसाः।
आजग्मुरन्योऽन्यमलक्षितोद्यमाः,
स यत्र कान्तो जव-लोल-कुण्डलाः॥

अर्थात् कैसा था वह सङ्गीत, जिसने **गोपियों** के मनस्तन्त्र को **कृष्ण** की ओर आकर्षित कर दिया था? **'तदनङ्ग-वर्द्धनम्'**—अर्थात् वह **अनङ्ग—कामदेव** का ही बल-वर्द्धक था, किन्तु इस सङ्गीत से सङ्गीत सुननेवाली **गोपियों** का मन **मनोज** की ओर आकर्षित न होकर **कृष्ण** के प्रति आकर्षित हो पड़ा, जो **मनोज का दर्प-दलन** करने के लिए उपस्थित थे। **भगवान् कृष्ण—भगवान्** हैं, **आत्म-स्वरूप** हैं। इनकी ओर आकर्षित होना ही **कामदेव का पराभूत होना** है। काम-रूपा कामनाओं से आकर्षित होकर ही नर-नारी लोकानुबन्धों में अनुरक्त रहते हैं। जब इस जीव-भाव पर **ईश्वर का अनुग्रह** हो जाता है, तो नर-नारियों के लोक-कामनात्मक सम्पूर्ण बन्धन विच्छिन्न हो जाते हैं एवं वे सम्पूर्ण लोकानुबन्धों को विस्मृत कर **ईश्वर-भाव** के प्रति आकर्षित हो पड़ते हैं। इसी भाव को लक्ष्य बना कर **शुक मुनि** कहते हैं—

दुहन्त्योऽभिययुः काश्चिदोहं हित्त्वा समुत्सुकाः। पयोऽधिश्रित्य संयावमनुद्वास्यापरा ययुः॥
परिवेषयन्त्यस्तद्धित्वा, पाययन्त्यः शिशून् पयः। शुश्रूषन्त्यः पतीन् काश्चिदश्नन्त्योऽपास्य भोजनम्॥
लिम्पन्त्यः प्रमृजन्त्योऽन्या, अञ्जन्त्यः काश्च लोचने। व्यत्यस्त-वस्त्राभरणाःकाश्चित् कृष्णान्तिकं ययुः॥
ता वार्य्यमाणाः पतिभिः, पितृभिर्भ्रातृ-बन्धुभिः। 'गोविन्दापहृतात्मानो', न न्यवर्त्तन्त मोहिताः॥
अन्तर्गृह-गताः काश्चिद्, गोप्योऽलब्ध-विनिर्गमाः। कृष्णं तद्-भावना-युक्ता, दध्युर्म्मीलित-लोचनाः॥
दुःसह-प्रेष्ठ-विरह-तीव्र-ताप-धुता-शुभाः। ध्यान-प्राप्ताच्युताश्लेष-निर्वृत्त्या क्षीण-मङ्गलाः॥
तमेव परमात्मानं, लोक-बुद्ध्यापि सङ्गताः। जुहुर्गुण-मयं देहं, सद्यः प्रक्षीण-बन्धनाः॥

उक्त पद्यों का तात्पर्य स्पष्ट है। **गोपियों ने गायों का दुहना छोड़ा, उबलते दूध को छोड़ा, परिपक्व होते अन्न को छोड़ा, बच्चों को दूध पिलाना छोड़ा। जो जिस गृह-कार्य में रत थी, उसने तत्क्षण उसका परित्याग**

कर कृष्ण के प्रति अनुगमन कर लिया। जिन्हें बल-पूर्वक रोक लिया गया, वे तीव्र-ताप के प्रज्ज्वलित अग्नि से अपने पाप-पुण्य-द्वन्द्वों को भस्म कर भगवत् -स्वरूप में विलीन हो गईं।

शुकदेव जी के उक्त **आध्यात्मिक मर्म** को शाप-ग्रस्त—मति-भ्रष्ट **परीक्षित** समझ नहीं पाते हैं और लोकानुबन्धी ऐन्द्रियक भाव से वे ऐसा प्रश्न करते हैं, जैसा आज भी सर्व-सामान्य समझते हैं कि **गोपियों का प्रेम** तो एक प्रकार का **नर-नारी का लौकिक प्रेम** है—

कृष्णं विदुः परं कान्तं, न तु ब्रह्म-तया मुने! गुण-प्रवाहो परमस्तासां गुण-धियां कथम्॥

अर्थात् हे मुने! गोपियाँ कृष्ण को ब्रह्म थोड़े ही मानती थीं। वे तो 'कान्त'-भाव से ही आकर्षित हो रही थीं। अन्तर्गृह-गता गोपियाँ इस गुण-भाव के रहते हुए निर्गुण ब्रह्म -स्थिति में कैसे परिणत हो गईं?

शुकदेव जी यद्यपि विस्तार से **परीक्षित** की कु-शङ्काओं का निराकरण करते हैं, किन्तु यहाँ **परीक्षित** की **भ्रान्त कल्पना** पर सहसा आविष्ट हो पड़ते हैं और एक प्रकार से **परीक्षित की भर्त्सना** करते हुए **परीक्षित** का ध्यान **कृष्ण के योगेश्वरात्मक ब्रह्म-भाव** की ओर आकर्षित करते हैं—

उक्तं पुरस्तादेतत्ते, चैद्यः सिद्धिं यथा गतः। द्विषन्नपि हृषीकेशं, किमुताधोक्षज-प्रियाः॥
नृणां निःश्रेयसार्थाय, व्यक्तिर्भगवतो नृप! अव्ययस्याप्रमेयस्य, निर्गुणस्य गुणात्मनः॥
कामं क्रोधं भयं स्नेहमैक्यं सौहृदमेव च। नित्यं हरौ विदधतो, यान्ति तन्मयतां हि ते॥
न चैवं विस्मयः कार्यो, भवता भगवत्यजे योगेश्वरेश्वरे कृष्णे, यत एतद्विमुच्यते॥

अर्थात् हे राजन्! सावधान!! तुम पुनः लक्ष्य-च्युत बन रहे हो! हमने पूर्व में ही बतला दिया है कि कृष्ण मनुष्य नहीं हैं, अपितु साक्षात् योगेश्वर ब्रह्म हैं। पहिले तो यह मानना ही भूल है कि गोपियाँ किसी लोक-भावना से —कान्त-भाव से कृष्ण के प्रति आकर्षित हो रही हैं। यदि थोड़ी देर के लिए ऐसा मान भी लिया जाए, तो भी तुम्हारा प्रश्न निर्मूल है। शिशुपाल यदि भगवान् के साथ शत्रुता करता हुआ भी मुक्त हो जाता है, पूतना यदि विष-पान कराती हुई भी धात्री-पद प्राप्त करती हुई मुक्त हो जाती है, तो क्या गोपियाँ प्रेम करती हुई मुक्त न होंगी? यह मत भूलो कि मानव-मात्र के बन्धन-विमोक के लिए यह तो साक्षात् अश्वत्थेश्वर-अव्यय ब्रह्म का पूर्णावतार है, जिसके साथ काम-क्रोध-भय-स्नेह-ऐक्य-मैत्री आदि जिस किसी भाव से सम्बन्ध स्थापित कर लेने मात्र से 'आत्म-रति' व्यक्त हो पड़ती है और निःश्रेयस-पद् प्राप्त हो जाता है। अतएव योगेश्वरेश्वरात्मक भगवान् के इस अव्यय स्वरूप के प्रति तुम्हें अपनी मानुषी लोक-बुद्धि से कभी विचार नहीं करना चाहिए।

आगे क्या हुआ, सुनिए—

ता दृष्ट्वान्तिक-माया 'ता', भगवान् व्रज-योषितः।
अवदत् वदतां श्रेष्ठो, वाचः पेशैर्विमोहयन्॥

अर्थात् **वंशी-वादन** से **कृष्ण** के प्रति आकर्षित-मना **व्रजाङ्गनाएँ** अन्योन्य अलक्षितोद्यमा बनती हुईं **यमुना-तट** पर निरतिशय उल्लास के साथ समवेत हो गईं। चारों ओर **गोपियाँ**, बीच में **कृष्ण**। आरम्भ से ही तिरस्कृत **कामदेव** को उक्त स्थिति से मानो पुनः एक बार कुछ कहने का सुअवसर मिल गया। ऐसा प्रतीत हुआ, मानो मूक-भाषा में **कामदेव भगवान्** से कह रहे हों कि—क्यों? देख लिया न **कामदेव का प्रभाव?** निर्जन **यमुना का तट,** निर्मल चाँदनी रातें और लोकोत्तर सुन्दरियों के मध्य में आपका सु-मधुर **वंशी-वादन**! इस प्रत्यक्ष स्थिति को देख-सुनकर कौन यह न कहेगा कि यह तो **कामदेव की ही विजय** है? यों कहकर **कामदेव** ने मानो पुनः अपने आपको दर्प-पूर्वक व्यक्त किया। **भगवान्** ने भी **कामदेव** के इन दर्प-भावों को तत्काल लक्ष्य बनाया और **कामदेव** के **प्रत्यक्ष अभियोग का दलन** करते हुए पेशल-वाणी से **गोपियों** से कहने लगे—

स्वागतं वो महा-भागाः! प्रियं किं करवाणि वः?
व्रजस्यानामयं कच्चित्? ब्रूताऽऽगमन-कारणम्?॥

अर्थात् आओ ! आओ **गोपियों!** हम तुम्हारा स्वागत कर रहे हैं (सम्मान-पूर्वक)। कहो, हम आपकी क्या सेवा करें? क्या **व्रज** पर फिर कोई आपत्ति तो नहीं आ गई? कहिए, कहिए! कैसे आज यहाँ यों सहसा पधारना हुआ?

ध्यान दीजिए—'**स्वागतं वो महा-भागाः**' वाक्य पर, '**प्रियं किं करवाणि वः**' की मार्मिक व्यञ्जना पर एवं '**व्रजस्यानामयं कच्चित्**' की ध्वनि पर। कैसा **विशिष्ट शिष्टाचार** है, जिसमें **प्रेम-भाव** का सम्भवतः संस्पर्श भी नहीं है, **मानसिक रसानुभूति** का संस्मरण भी नहीं है। इस प्रकार की अनुराग-शून्या, विधि-विधानात्मिका, केवल लोकाचार-पथानुगामिनी, स्वागत, आतिथ्य, कुशल-क्षेम -प्रदर्शन, प्रश्नात्मिका पेशल-भाषा से **भगवान् द्वारा कामदेव का पुनः दर्प-दलन** ही तो सिद्ध होता है। यदि अब भी कुछ सन्देह है, तो लीजिए—स्थिति का और अधिक स्पष्टीकरण कर लीजिए—

रजन्येषा घोर - रूपा, घोर - सत्त्व - निषेविता। प्रतियात व्रजं नेह, स्त्रीभिः सुमध्यमाः॥
मातरः पितरः पुत्रा, भ्रातरः पतयश्च वः। विचिन्वन्ति ह्यपश्यन्तो, मा कृढ्वं बन्धु-साध्वसम्॥

अर्थात् **भगवान् गोपियों** से कहते हैं— दृष्टिपात करो **यमुना-तट** के शान्त निर्जन प्रान्त पर। कैसी शून्या, मानव-प्राणि-विहीना घोरा रात्रि है, जिसमें घोर-घोर-तम हिंसक प्राणी इतस्ततः स्वच्छन्द विचरण कर रहे हैं। क्षण-मात्र भी विलम्ब किए बिना **गोपियों!** व्रज की ओर लौट जाओ। इस प्रकार के भीषण एकान्त वातावरण में वयस्क

स्त्रियों को ठहरना नहीं चाहिए। (हम नहीं समझ पा रहे हैं कि तुम ऐसी घोर रात्रि में कैसे चली आईं? तुम्हारा यहाँ आने का क्या उद्देश्य है?)—

दृष्टं वनं कुसुमितं, राकेश-कर-रञ्जितम्।
यमुनाऽनिल-लीलैजत्तरु-पल्लव-शोभितम्॥

अर्थात् अच्छा! समझे। तुम सम्भवत: **शरच्चन्द्रिका से सुशोभित यमुना-तट की शोभा** देखने आई हो। (ठीक है, सभी को इन प्राकृतिक सुन्दर दृश्यों के दर्शन का समानाधिकार प्राप्त है)। किन्तु, अब तो यह इच्छा भी पूरी हो ली। चान्द्र-किरणों से रञ्जिता, मल्लिका से खिले हुए पुष्पों से सुरभिता एवं यमुना-तट-वर्ती शीतल-मन्द-सुगन्ध-पवन से विकम्पित होनेवाले तरु-पल्लवों से सुशोभिता वन-श्री का तुमने दर्शन-विहार कर लिया।

ध्यान दीजिए, उक्त पद्य की मार्मिक व्यञ्जना पर। जिस प्रकार एक सशक्त योद्धा एक निर्बल प्रतिद्वन्द्वी के साथ युद्ध करता हुआ मध्ये-मध्ये उसे उठा-उठा कर पटक लगाता रहता है, ऐसा ही कुछ यहाँ हो रहा है- **कामदेव** के साथ। **वन-श्री** का आकर्षक वर्णन जब **कामदेव** को थोड़ा जीवन प्रदान कर रहा था, तभी **भगवान्** ने इन **मनोज** महानुभाव को ऐसी पछाड़ लगाई कि वे अपने साधन-परिग्रहों को भूल गए। क्या स्वरूप था उस पछाड़ का? सुनिए—

तद्यात! मा चिरं गोष्ठं, शुश्रूषध्वं पतीन् सती:॥
क्रन्दन्ति वत्सा, बालाश्च, तान् पाययत दुह्यत॥

अर्थात् चली जाओ यहाँ से! क्षण-मात्र भी विलम्ब किए बिना लौट जाओ। देख ली वन की शोभा। जाओ और शीघ्र जाओ। (अरे, तुम वन-श्री के लिए ऐसी आतुर हो पड़ीं कि) तुम्हें अपनी **गौ माताओं के बछड़ों** का एवं अपने **दूध-पीते बच्चों** का भी ध्यान न रहा। जाओ, जाओ। बिना दूध निकाले बछड़े राँभ रहे होंगे। बच्चे क्रन्दन कर रहे होंगे। गायों का दूध निकालो! बच्चों को स्तन्य-पान कराओ!!

वर्णन की व्यञ्जना को लक्ष्य बनाइए। **गोपियाँ**— '**माता**' हैं, **नारी** नहीं। '**मातृ**'-पद की व्यञ्जना से क्या **कामदेव** निर्मम रूप से क्षत-विक्षत न हुए होंगे? अवश्य हुए होंगे। **नारी—माता** बनकर आमोद-प्रमोद-प्रधान मानसिक व्यासङ्गों से तटस्थ बन जाती है। तभी **भगवान् गोपियों से 'तद्यात! मा चिरं गोष्ठम्' कहते हैं,** किन्तु क्या मातृ-पदारूढ़ा नारी '**भगवद्-भक्ति**' भी नहीं कर सकती? इसका आमूल-चूड़ खण्डन करते हुए **भगवान्** स्वयं स्पष्टीकरण करते हैं—

अथवा मदभिस्नेहाद्-भवत्यो यन्त्रिताशया:।आगता: ह्युपपन्नं व:, प्रीयन्ते मयि जन्तव:॥
भर्तु: शुश्रूषणं स्त्रीणां, परो धर्म्मो ह्यमायया। तद्-बन्धूनाञ्च कल्याण्य:, प्रजानां चानुपोषणम्॥
दु:शीलो दुर्भगो वृद्धो, जड़ो रोग्यधनोऽपि वा। पति: स्त्रीभिर्न हातव्यो, लोकेप्सुभिरपातकी।।

अर्थात् मानते हैं, तुम्हारा हमारे साथ सहज स्नेह है। यह भी जानता हूँ कि उस आत्म-मूलक सहज विशुद्ध स्नेह से यन्त्र-वत् आकर्षित होकर ही तुम यहाँ आई हो। अर्थात् तुम किसी **लोक-बुद्धि** से—**काम-भाव** से नहीं आईं। लोक-मानव-मानवियाँ इसी प्रकार **भगवत्-स्वरूप से स्नेह** प्रकट किया करते हैं, किन्तु जानती हो—**भगवान् से प्रेम** क्यों किया जाता है? कभी उस शास्त्र से पूछा है, जिसके बल पर अपने भक्ति-भाव को चरितार्थ करने के

लिए तुमने यहाँ तक आ जाने का साहस कर लिया है? यदि नहीं, तो सुनो—हम बतलाते हैं। '**सह-धर्म्म चरताम्**' के अनुसार **पति की उपासना का साहचर्य्य** ही उपासना-पथ है। पति के सहयोग से धर्म-पथ का अनुष्ठान, पारिवारिक व्यक्तियों की स्वस्ति-कामना, स्व-सन्तति का पालन-पोषण आदि-आदि मर्यादाएँ ही धर्म है। इसलिए—'**तद्यात! मा चिरं गोष्ठ।**' लौट जाओ। हो गई **भगवद्-भक्ति** भी। अब क्या शेष रहा जानना। हाँ, एक प्रश्न शेष है, तो लो सुन लो, उसके सम्बन्ध में भी—

श्रवणाद् दर्शनाद् ध्यानान्मयि भावोऽनुकीर्त्तनात्।
न तथा सन्निकर्षेण, प्रतियात ततो गृहान्॥

अर्थात् तुम कह सकती हो कि जब तक **भगवान् का सगुण स्वरूप** किसी को प्रत्यक्ष रूप से उपलब्ध न हो, तब तक **गृहस्थ-धर्म का पालन** करते हुए पति के माध्यम से ही **भगवदाराधन** किया जाना चाहिए, किन्तु जब महद् भाग्य से **सगुण भगवान्** सामने आ जाएँ, तो ऐसी दशा में तो यह प्रतिबन्ध कोई महत्त्व नहीं रखता। इस विप्रतिपत्ति पर हमें '**भक्ति**' का यह तत्त्व तुम्हारे सम्मुख रखना पड़ेगा कि **भगवद्-गुण-श्रवण, भाव-प्रतिमान-रूप से भगवद्-दर्शन, चिन्तन, संस्मरण** से जिस सरलता से **ईश्वर-भाव** जीव के सन्निकट आता है, वैसे सगुण स्वरूप के सान्निध्य से नहीं। (उदाहरण-स्वरूप **अर्जुन का व्यामोहन** प्रसिद्ध है, **दुर्योधन-कंस आदि की भ्रान्ति का इतिहास** विद्यमान है।) इसीलिए अन्तिम बार हम तुम्हें आदेश दे रहे हैं कि—'**प्रतियात गृहान्**'! अर्थात् लौट जाओ इसी क्षण अपने-अपने निवास-स्थानों को!

आगे क्या हुआ और गोपियों ने क्या कहा तथा क्या किया? इत्यादि रहस्य-पूर्ण प्रश्नों के लिए '**रास-पञ्चाध्यायी**' का आस्था एवं श्रद्धा-पूर्वक मनन करना ही चाहिए। **शुक मुनि** कहते हैं—

इति विप्रियमाकर्ण्य, गोप्यो गोविन्द-भाषितम्।
विषण्णा भग्न-सङ्कल्पाश्चिन्तामापुर्दुरत्ययाम्॥

अर्थात् **गोपियाँ गोविन्द की यह वाणी** सुनकर सर्वथा खिन्न-उदास हो गईं। उनके मानस-सङ्कल्प छिन्न-भिन्न हो गए। अपने एकमात्र प्रिय **आराध्य कृष्ण** से यों धारणा से सर्वथा विपरीत प्रताड़ित होकर **गोपियाँ** निःसीम चिन्ता में डूब गईं। (गोपियों को यह कहाँ विदित था कि **भगवान्** आज **कामदेव के दर्प-दलन** के लिए सन्नद्ध हैं।)

कृत्वा मुखान्यवशुचः श्वसनेन शुष्यद्, बिम्बाधराणि चरणेन भुवं लिखन्त्यः।
अस्तैरुपात्तमषिभिः कुच-कुङ्कुमानि, तस्थुर्मजन्त्य उरु दुःख-भराः स्म तूष्णीम्॥

अर्थात् **गोपियों** के मस्तक असह्य वेदना-तिरस्कार-चिन्ता से अवनत हो गए। **गोपियाँ** अत्यन्त शोक-संविग्न-मानसा बन गईं। उनका श्वास-प्रश्वास प्रचण्ड-रूप से चलने लगा। तापाग्नि-मिश्रित शोकोच्छ्वास से **गोपियों** के कण्ठ-ओष्ठ सूख गए। भयावहा चिन्ता-समाकुलिता स्थिति से निष्प्राण-समा बनीं **गोपियाँ** दृष्टि नीची कर अपनी पादांगुलियों से भूमि-विलेखन करने लगीं। शोकाश्रु-प्रवाह से **गोपियों** के नेत्रों का अञ्जन प्रवाहित होकर वक्ष-स्थल पर '**उर बिच बहत पनारे**' को चरितार्थ करने लगा। वक्ष-स्थल में समालिप्त कुङ्कुम-राग कज्जल-मिश्रित अश्रु-१ ओं से धुल-पुँछ कर **कृष्ण**-रूप में परिणत हो गया। दुःखात्यन्त-वेग से **गोपियों** की हिचकियाँ बँध गईं

और इस प्रकार सर्वात्मना अत्यन्त कातर अवस्था में आ जानेवाली ये **गोपियाँ** अपने हाथों से अश्रु-प्रोच्छन करती हुईं स्तब्ध-जड़-पाषाण-वत् भित्ति-चित्र-वत् खड़ी-की-खड़ी रह गईं (मानो मनोज को उसी की सेनाङ्ग-भूता गोपियों की इस स्थिति ने सर्वथा पराभूत कर दिया हो)।

गोपियों की उक्त स्थिति वास्तव में यथार्थ है। अनुरागात्मक राग-भाव के आकर्षण से केवल चक्षुरिन्द्रिय के द्वारा **भगवान् कृष्ण** के आत्म-बुद्धि-निबन्धन अनुपाख्य-रूप **कृष्ण-तत्त्व के दर्शन** कदापि नहीं हो सकते। **गोपियों** ने **मानसिक हृदयस्थ राग** के द्वारा **कृष्ण को आँखों से देखने की चेष्टा** की। इस दृष्टि से तो **गोपियाँ कृष्ण** का केवल **नन्द-नन्दन-स्वरूप** ही देख सकीं, जिसका मनः-शरीर-मात्र-निबन्धन मानुष-भाव से ही सम्बन्ध है। सम्भवतः इसी सीमा-भाव के कारण **भगवान्** का विभु-स्वरूप—व्यापक स्वरूप **गोपियों** के सम्मुख अब तक उपस्थित नहीं हुआ। जब **कृष्ण** आँखों से उतर कर वक्ष-स्थलानुबन्धी **हृदय-प्रदेश** पर आ गए, तो वहाँ की '**अनुरागात्मिका रागासक्ति**' प्लावित हो गई एवं **कृष्ण-भाव** व्यक्त हो पड़ा और इस स्थिति के उत्पन्न होते ही **गोपियों का उद्बोधन** हो पड़ा। '**अस्त्रैरुपात्तमषिभिः कुच-कुंकुमानि**' वाक्य इसी भाव को प्रति-ध्वनित कर रहा है। दुःख-वेग से नेत्र निमीलित करते ही **गोपियों** के हृदय में मानो **भगवान् का व्यापक—वासुदेव-स्वरूप** उद्बुद्ध हो पड़ा एवं इस उद्बोधन से **गोपियाँ** महान् बल प्राप्त करती हुईं कुछ आवेश-पूर्वक यों कहने लगीं—

मैवं विभो! ऽर्हति भवान् गदितुं नृशंस! सन्त्यज्य सर्व-विषयांस्तव पाद-मूलम्।
'भक्ता' भजस्व ! दुरवग्रह मा त्यजास्मान्। देवो यथाधिपुरुषो भजते मुमुक्षून्।।

क्या कह रही हैं **गोपियाँ** ? सावधान-पूर्वक शब्दों पर ध्यान दीजिए! **गोपियाँ** कहती हैं— '**हे विभो! अर्थात् हे व्यापक ! क्या आपने ऐसा कुछ समझ लिया है कि हम आपको केवल सुन्दर-सलोना-आकर्षक मानव-मात्र समझ कर अपनी गृहस्थ-मर्यादाओं का परित्याग कर आपसे प्रेम करने चली आई हैं ?**

मैवम् ! छोड़ दीजिए आप अपनी इस कल्पना को! यदि आपने इसी को लक्ष्य बनाकर हमारी यों प्रतारणा की है, तो स्मरण रखिए—हम आई हैं संसार की लौकिक काम-वासनाओं का परित्याग कर आपके चरणारविन्दों की परा-भक्ति करने। हम आपकी प्रेमिकाएँ नहीं हैं, अपितु 'भक्ता' हैं। आप हमारा यों परित्याग न कीजिए। जिस प्रकार आपका मुमुक्षु योगियों पर अनुग्रह रहता है, उसी प्रकार आपको हम पर अनुग्रह करना चाहिए क्योंकि हम मुमुक्षु-भावना से ही यहाँ उपस्थित हुई हैं।'

आगे गोपियाँ-'**प्रेष्ठो भवांस्तनुभृता किल बन्धुरात्मा**', '**तन्नः प्रसीद परमेश्वर ! मा स्म छिन्द्या**', '**ध्यानेन याम पदयोः पदवीं सखे ! ते**' '**तृप्तात्मनां पुरुष-भूषण! देहि दास्यम्**'- कहकर अपना **विशुद्ध आध्यात्मिक स्वरूप** व्यक्त करती हैं और ऐसा होने पर '**कन्दर्प-दर्प-दलनात्मक महा-रास**' आरम्भ होता है, जिसके स्मरण-मात्र से भी मानव के दुरित विनष्ट हो जाते हैं।

स्मरण रहे—उक्त '**रास-लीला**' उसी **उडु-पति आधि-दैविक कृष्णचन्द्र की लीला का भौतिक प्रतीक** है, जैसा कि **नाक्षत्रिक वैदिक रास-प्रकरण** में स्पष्ट किया जा चुका है। इसी अभिप्राय से '**रास**' का उपक्रम करते हुए **शुक मुनि** ने कहा है-

ताभिः समेताभिरुदार चेष्टितः, प्रियेक्षणोत्फुल्ल-मुखीभिरच्युतः।
उदार-हास-द्विज-कुन्ददीधितिर्व्यरोचतैणाङ्क इवोडुभिर्वृतः।।

'रास' क्या आरम्भ हुआ-मानो **कामदेव का प्रत्यक्ष-रूप से दर्प-दलन** आरम्भ हुआ। अथवा, यों कहिए मानो स्वयं **भगवान्** ने **रास-नर्त्तन-ताण्डव** से **रति-पति** को उद्दीप्त कर पराजित करना आरम्भ किया। कैसे ? तो सुनिए —

बाहु - प्रसार - परि-रम्भ करालकोरु, नीवी-स्तनालभन-नर्म्म-नखाग्र-पातैः।
क्ष्वेल्यावलोकक-हसितैर्व्रज-सुन्दरीणां, उत्तम्भयन् रति-पतिं रमयाञ्चकार॥

क्या समस्त विश्व में '**मार-विजय**' का ऐसा कोई दूसरा उदाहरण मिल सकेगा ? असम्भव। अशीति अर्थात् ८० वर्ष में आकर तो सभी अपने आपको '**मार-विजेता**' उद्घोषित कर सकते हैं। **केल-पत्र-रस-पान** के द्वारा तो अपनी **काम-शक्ति** को नष्ट कर युवा-पुरुष भी '**कामारि**' बन सकते हैं अथवा प्रकृति-विरुद्ध काय-क्लेश-कल्पित तपः-संयम के द्वारा अपने मानव-जीवन को बाह्य प्रदर्शन मात्र के लिए अपने आपको **काम-विजेता, वीत-राग** प्रमाणित कर सकते हैं, किन्तु काम-साधक सम्पूर्ण साधन-परिग्रहों के विद्यमान रहते; विश्व के प्राकृतिक सौन्दर्य को अपने दाम्पत्य-गृहस्थ-जीवन से सुव्यवस्थित बनाए रखते हुए, संयम-पूर्वक जीवन-पथ पर सङ्घर्ष द्वारा चलते हुए **काम-विजय** करना ही '**वास्तविक काम-विजय**' है। ऋषि-दृष्टि में **कामासक्ति के परित्याग** का ही नाम '**काम-विजय**' है, न कि कर्म-परित्याग का नाम-'**काम-विजय**'।

'**काम्यानां कर्मणां न्यासं संन्यासं कवयो विदुः**'-ही हमारे देश के तपस्वी संन्यासी वीत-रागी की सहज परिभाषा है, जिसका आदर्श स्वयं **भगवान्** के उक्त '**रास-क्रीड़ा**' से स्थापित हुआ है। सर्व-संग्रहात्मक लोक-सौन्दर्य में निष्काम भाव से प्रतिष्ठित रहना ही '**भारतीय त्याग**' की वह मौलिक परिभाषा है, जो आज दुर्भाग्य-वश विलुप्त हो चली है। इसके स्थान पर , गृहस्थ-धर्म-प्रतिबन्धिका जैसी **कल्पित वेदान्त-निष्ठा** जागरूक हो पड़ी है, जिसने **प्रकृति-विरुद्ध** '**त्याग**' का डिण्डिम घोष कर **वैदिक मानव-धर्म** का समस्त लौकिक ऐश्वर्य तथा आत्मिक शान्ति-भाव अभिभूत कर दिया है।

ऐसे त्यागी जी और तपस्वी जी— '**त्याग**' शब्द के उच्चारण-मात्र के भी अधिकारी नहीं माने जा सकते, जिनके प्रारम्भिक कोश में '**नास्ति सार-शून्यं शून्यं**' ही एक-मात्र जागरूक बना हुआ है। '**त्याग**'-शब्द सापेक्ष है। '**संग्रह**' हो जाएगा, तभी '**त्याग**' होगा। बिना '**संग्रह**' के '**त्याग**' का अर्थ होगा— काय-क्लेश-मात्र का अनुगमन करते हुए, राष्ट्र में एक प्रकार की **श्री-विहीनता, शून्यता, असारता, क्षण-भङ्गुरता** की शुष्क उद्वेग-करी घोषणाओं से **संस्कृति-तत्त्व-शून्य** भ्रान्त मानवों को आकर्षित करते हुए अन्ततोगत्वा अपने आपको भी **कीनाश-निकेतन** (यम-सदन) का सम्मान्य अतिथि बना लेना।

सर्व-समृद्धि-शाली **अध्यात्म-निष्ठ भारत-राष्ट्र** में ऐसा ही कुछ घटित-विघटित हुआ है। इसके दुष्परिणाम-स्वरूप जगन्मिथ्यात्व-मूलक उक्त '**त्याग**' ने हमें अपने **ज्ञान-सह-कृत विज्ञान** से वञ्चित किया, हमारा राज्य-साम्राज्य धूलि-धूसरित किया और अन्ततोगत्वा हम और हमारा राष्ट्र उक्त **कल्पित त्याग-तपस्या** से शून्य—शून्य-मात्र रह गए! महद्-भाग्य से पुनः हमारे राष्ट्र ने विलुप्त वैभव प्राप्त किया है। अतएव अत्यन्त सावधानी से निष्ठा-पूर्वक अपने राष्ट्र की **चिरन्तना अध्यात्म-निष्ठा को मूलाधार बनाते हुए** हमें **अपने सम्मिलित राष्ट्रीय प्रयास से राष्ट्र को उत्तरोत्तर पुष्पित-पल्लवित** करना है। कहीं ऐसा न हो कि प्रत्यक्ष-प्रभाव-मूला भावुकता से प्रभावित होकर हमारा यह **अभिनव स्वतन्त्र राष्ट्र** पुनः अपनी उसी भूल को दोहरा बैठे, जिस भूल ने **भारत राष्ट्र** को **राष्ट्र**-

समृद्धि से वञ्चित बना रक्खा था एवं **आत्मा-बुद्धि-मन-शरीर-निबन्धना परतन्त्रता** से समन्वित कर रक्खा था। यही '**रास-पञ्चाध्यायी**' के उक्त पावन-संस्मरणों से सम्बन्ध रखनेवाले '**मार-विजय**' का **लोक-शिक्षात्मक पक्ष** है।

भगवान् के उक्त **मार-विजयात्मक** '**रास-क्रीडन**' से आगे चलकर जब **गोपियों** में पुनः '**मद**'-'**मान**' व्यक्त हो पड़ता है, तब उसी क्षण **सर्वेश्वर भगवान्** सहसा अन्तर्विलीन हो जाते हैं। इससे भी हमें यह **लोक-शिक्षा** मिलती है कि **ईश्वरानुग्रह से प्राप्त ऐश्वर्य तथा आत्म-निष्ठा** के प्रति हमें दुर्भाग्य-वश यदि **मद** व **अति-मानात्मक** अभिमान हो पड़ता है, तो प्राप्त ऐश्वर्य, साम्राज्य, वैभव पुनः विलीन हो जाता है। **भगवान्** फिर मिलते हैं— **गोपियों** को, किन्तु अत्यन्त **तपश्चर्या** के बाद। यही स्थिति हम मानवों की समृद्धियों में विघटित है। **मद-मान-दम्भ-छल-कपट-ईर्ष्या** आदि से जब मानव प्राप्त **ईश्वरीय वैभव** से वञ्चित हो पड़ता है, तो उसे उसी प्रकार रोना पड़ता है, जैसे कि **गोपियों** को रोना पड़ा था। किस उपाय से **गोपियों** ने पुनः किस रूप से **पूर्णेश्वर** को प्राप्त कर अपना **भक्तिरैश्वर्य** सुरक्षित किया, इस प्रश्न का उत्तर भी **श्रीशुक मुनि** से ही सुनिए-

इति गोप्यः प्रगायन्त्यः, प्रलपन्त्यश्च चित्रधा। रुरुदुः सु-स्वरं राजन् ! कृष्ण-दर्शन-लालसा।
तासामाविरभूच्छौरिः, स्मयमान-मुखाम्बुजः। पीताम्बर-धर-स्त्रग्वी, साक्षान् मन्मथ-मन्मथः॥

अर्थात् इस प्रकार **गोपियाँ— कृष्ण-गुण-गान** करती हुईं, अनेक प्रकार के करुणा-पूर्ण विलाप करती हुईं सम्मिलित-रूप से स्वर-सन्धान-पूर्वक रोने लगीं। **कृष्ण के पुनः दर्शन की लालसा** से **गोपियों** का यह **करुण-गान** उपक्रान्त बना (प्रायश्चित्तात्मक इस विलाप से शुद्ध सत्व-भाव में परिणत हो जानेवाली गोपियों के माध्यम से)। सहसा **शूरसेन के पौत्र**, अतएव '**शौरि**' नाम से प्रसिद्ध वे **भगवान्** प्रकट हो पड़े, जो मृदु-मन्द हास कर रहे थे— जिनके गले में **विजय-माल** पड़ी हुई थी, जिन्होंने **पीताम्बर धारण** कर रक्खा था एवं जो आज '**मन्मथ-मन्मथ**'— '**कामदेव**' **के दर्प को विगलित करनेवाले** ही प्रमाणित हो रहे थे।

यहाँ आकर **कामदेव** परास्त हो जाते हैं। **सर्वात्मना भगवान् का पूर्णावतारत्व** अवनत-शिरस्क बनकर **कामदेव** भी स्वीकार कर लेते हैं, क्योंकि '**आत्मन्यवरुद्ध-सौरतः**'-रूप से **कामदेव— भगवान् की आत्म-सीमा** में ही विलीन हो जाते हैं। '**रास-क्रीड़ा**' में नवीन-रूप से प्रकटीभूत ये **भगवान्** न तो '**नन्द-नन्दन**' हैं, न '**वसुदेव-नन्दन**', अपितु ये तो '**शौरि**' **भगवान्** हैं।

महान् पौरुष में विजय-लाभ करने के अनन्तर योद्धा भारतीय यशः-ख्यापन-मर्यादा में पिता के नाम से प्रसिद्ध न होकर अपने यशस्वी पितामहादि के 'यशो-नामों' से ही व्यवहृत होता है। इसी दृष्टि से **भगवान् राम— 'रघु-वंशी'** कहलाए हैं। यहाँ '**रास-लीला**' में भी **भगवान्** ने मानो वैसा **पौरुष** व्यक्त किया है, जो विश्व के इतिहास में प्रत्यक्ष इतिहास की दृष्टया सम्भवतः प्रमुख घटना है। तभी **काम-विजयोपलक्ष** में पराजित स्वयं **कामदेव** ने मानो इनके गले में **विजय-माल** डाल दी और नत-मस्तक होकर प्रणत-भाव से कहा कि **भगवन्!** सचमुच आप '**शौरि**' हैं। अर्थात् **शूरसेन** जैसे **महान् शूर-वीर बाबा के शूरवीर पौत्र** हैं, जिन्होंने मुझ जैसे **विश्व-विजयी मन्मथ कामदेव के मद का मन्थन** कर आज '**मन्मथ-मन्मथ**'-उपाधि प्राप्त कर ली है।

क्या अब भी कुछ सन्देह रह गया है, '**रास-पञ्चाध्यायी**' के सम्बन्ध में ? यदि हाँ, तो निम्न-लिखित कतिपय वचनों का मननानुग्रह कीजिए। अवश्य ही शेष सन्देह भी विलीन हो जाएँगे—

न खलु गोपिका-नन्दनो भवान्, अखिल-देहिनामन्तरात्म-दृक्।
विखनसार्थितो विश्व-गुप्तये, सख उदेयिवान् सात्वतां कुले॥
तत्रोपविष्टो भगवान् स ईश्वरो, योगेश्वरान्तर्हृदि कल्पितासनः।
चकास गोपी-परिषद्-गतोऽर्चितस्त्रैलोक्य-लक्ष्म्येक-पदं वपुर्दधत्।।
एवं परिष्वङ्ग-कराभिमर्श, स्निग्धेक्षणोद्दाम - विलास - हासैः।
रेमे रमेशो व्रज-सुन्दरीणां, यथार्भकः स्व - प्रतिबिम्ब - विभ्रमः॥
एवं शशाङ्कांशु - विराजिता निशाः, स सत्यकामोऽनुरता बलागणः।
सिषेव 'आत्मन्यवरुद्ध सौरतः', सर्वाः शरत्-काव्य-कथा-रसाश्रयाः॥

अर्थात् (भगवान् कृष्ण के सर्वेश्वरात्मक ब्रह्म-स्वरूप को अभिव्यक्त करती हुई गोपियाँ करुण-स्वर से यों कहने लगीं कि) हे भगवन्! हम यह सर्वथा सर्वात्मना निश्चय-रूप से जानती हैं कि आप केवल गोपिका-नन्दन ही नहीं हैं, यशोदा-नन्दन ही नहीं हैं, आप तो हम सब जीवों (भोक्ता सुपर्णों के) साक्षी (सुपर्ण) रूप अन्तर्यामी आत्मा हैं। भोक्ता-जीव-सुपर्णों के 'सख्य'-रूप हे साक्षी सुपर्ण! ('द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया'-श्रुति) आपने तो सर्व-लोक-स्त्रष्टा (आदि प्रकृति-रूप) स्वयम्भू ब्रह्मा की प्रार्थना से ही सम्पूर्ण विश्व की रक्षा के लिए मानुष-रूप में अवतार लिया है।

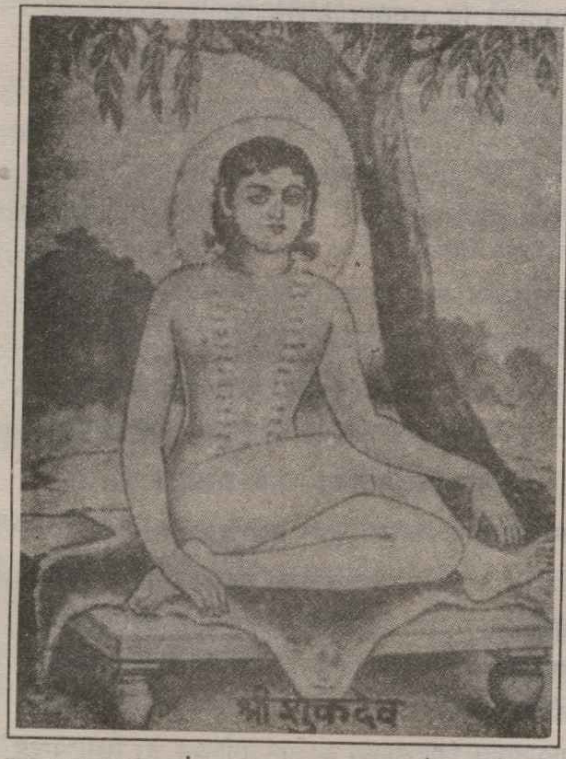

(आगे शुकदेव जी कहते हैं) जो सर्वेश्वर-सगुण-अव्ययेश्वर कृष्ण भगवान् योगियों के अन्त:करण में अवस्थित हैं, वे योगीश्वर (योगियों के ईश्वर) तथा योगेश्वर (बुद्धि-योग-प्रवर्तक) भगवान् कृष्ण आज गोप-गोष्ठी में विराजमान हो, उनसे आस्था-श्रद्धा-पूर्वक 'पूजित', त्रैलोक्य की कान्ति के एक-मात्र आश्रय-भूत अपनी दिव्य-कान्ति-छटा से अत्यन्त ही सुशोभित हुए।

जैसे विभिन्न स्थानों में अनेक जल-परिपूर्ण घट एवं दर्पणादि रक्खे हों और वहाँ क्रीड़ा-कौतुक-परायण एक बाल-शिशु पहुँचे तथा झुक-झुक कर उन विभिन्न पात्रों की ओर अपना मुख करे, तो उसे सभी आधार-पात्रों में अपना ही प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ेगा— अपने ही प्रतिबिम्बों को देख-देखकर बालक हँसता हुआ, ताली बजाता हुआ अपने ही प्रतिबिम्बों से खेलने लगता है, ठीक उसी प्रकार 'रास-क्रीड़ा' में कुछ ऐसा ही घटित हुआ। ९-१० वर्षों के बाल-कृष्ण स्वयं साक्षात् सगुण ब्रह्म हैं। इनके चारों ओर व्याप्त 'महदू-ब्रह्म-प्रकृति'-रूपिणी गोपियाँ

विभिन्न आधार-पात्र हैं। इनका चेतन-रूप जीव-भाग सगुण ब्रह्म का ही प्रतिबिम्ब है। इन चित्-प्रतिबिम्बों से ही सगुण ब्रह्म—बाल-कृष्ण क्रीड़ा करते हैं।

सृष्टि में **पुरुष—प्रकृति** के साथ क्रीड़ा ही तो कर रहा है। '**एवं परिष्वङ्ग-कराभिमर्श- स्निग्धेक्षणोद्दाम-विलास-हासैः**'- वाक्य से **प्रकृति-पुरुष-समन्वय-लक्षण-चिदात्मा** तथा **चिदाभास** (प्रतिबिम्ब) के मिथुनी-भाव का विश्लेषण होता है।

गोपी-गण तथा मत्त भ्रमरों से चारों ओर से घिरे हुए **भगवान् बाल-कृष्ण** यमुना-तट के उस सुरम्य उपवन में, जिसमें जल और स्थल के पुष्पों (कमल, मल्लिकादि) के सुगन्ध से सुवासित शीतल मन्द-सुगन्ध-पवन प्रवाहित हो रहा था, इस दिव्य छटा के साथ विहार करने लगे जैसे कि दिव्य-मद से समन्वित मत्त गजेन्द्र अपने यूथ के साथ चङ्क्रमण करता रहता है।

श्रद्धा से समन्विता यदि आस्था हममें है, तो हम उक्त '**शरत्-काव्य-कथा**' **से अपने मनस्तन्त्रों को रसाप्लुत** कर सकते हैं। रही बात सन्देह-परम्पराओं की, तो यह तो मानवीय बहिर्मुख मन का एक स्वभाव ही है। तभी तो यहाँ तक कथा-भाग सुनने के अनन्तर भी ब्राह्मण के शाप से अभिशप्त **परीक्षित** अपनी श्रद्धा का समन्वय करने में असमर्थ रहे और पुनः सन्देह-पङ्क-निमग्ना वैखरी वाणी का अनुगमन कर ही बैठे—

संस्थापनाय धर्म्मस्य, प्रशमायेतरस्य च। अवतीर्णो हि भगवान्, अंशेन जगदीश्वरः॥

स कथं धर्म्म-सेतूनां, वक्ता-कर्त्ताभिरक्षिता। प्रतीपमाचरद् ब्रह्मन् ! पर-दाराभिमर्शनम्॥

आप्त-कामो यदु-पतिः, कृतवान् वै जुगुप्सितम्। किमभिप्राय एतं नः, संशयं छिन्धि सुव्रत!॥

अर्थात् अपना सन्देह व्यक्त करते हुए शाप-ग्रस्त परीक्षित **शुक मुनि** से कहते हैं कि-'हे मुने! भगवान् कृष्ण ने तो धर्म-स्थापन के लिए एवं अधर्म के मूलोच्छेद के लिए ही मानुषावतार धारणा किया था। ऐसी स्थिति में धर्म-मर्यादा के प्रवक्ता-निर्माता-रक्षक स्वयं भगवान् कृष्ण ने 'पर-स्त्री-गमन' (रूप से प्रतीयमान रास-क्रीड़न-रूप)-जैसा विरुद्ध आचरण कैसे और क्यों कर डाला ? ब्रह्मन्! सर्वथा आप्त-काम (आत्म-काम-निष्काम) भगवान् कृष्ण ने भी ऐसा लोक-दृष्टया निन्दनीय कर्म क्यों कर डाला ? कृपा कर मेरे इस सहज सन्देह को दूर कीजिए।

सर्वज्ञ शुक मुनि ने **परीक्षित** के उक्त संशय का किस प्रकार मूलोत्पाटन किया, उसका विस्तार के साथ विश्लेषण यहाँ सम्भव नहीं है। इस सम्बन्ध में केवल निम्न-लिखित समाधान-वचन ही पर्याप्त मानना चाहिए—

यत् पाद-पङ्कज-पराग-निषेव-तृप्ता, योग-प्रभाव-विधुताखिल-कर्म-बन्धाः।

स्वैरं चरन्ति मुनयोऽपि न नह्यमानास्तस्येच्छयात्त-वपुषः कुत एव बन्धः॥

अर्थात् हे राजन्! सावधान! फिर भूल कर रहे हो। अरे! जिनके चरण-कमल की रज-मात्र के स्मरण-मात्र से स्व-योगानुष्ठान में प्रवृत्त योगी अपने कर्म-बन्धनों को क्षण-मात्र में काट फेंकते हैं, जिनके कृपा-बल पर सम्पूर्ण विधि-निषेधों के बन्धन से मुनि-जन विमुक्त होकर स्वच्छन्द विचरण करने लगते हैं, उन लीला-मय किन्तु तत्त्वतः अलील भगवान् के ऐच्छिक मानव-शरीर से भगवान् बन्धन में आ जाएँगे, यह कल्पना करना भी महा-पाप है। सुन! अवधान-पूर्वक सुन! श्रद्धा-युक्ता आस्था के आधार पर निष्ठा-पूर्वक निदिध्यासन का अनुगामी बन, तेरे सभी सन्देह अवश्य ही दूर हो जाएँगे एवं शाप-मुक्त होकर तू अवश्य ही शान्ति-लाभ कर लेगा।

गोपीनां तत्-पतीनाञ्च, सर्वेषामेव देहिनाम्। योऽन्तश्चरति सोऽध्यक्षः, क्रीडनेनेह देह - भाक्।
अनुग्रहाय भूतानां, मानुषं देहमास्थितः। भजते तादृशी क्रीड़ा, याः श्रुत्वा तत्परो भवेत्॥
नासूयन् खलु कृष्णाय, मोहितास्तस्य मायया। मन्यमानाः स्व-पार्श्वस्थान्, स्वान् स्वान् दारान् व्रजोकसः॥
ब्रह्म - रात्र उपावृत्ते, वासुदेवानुमोदितः। अनिच्छन्त्यो ययुर्गोप्यः, स्व-गृहान् भगवत्-प्रियाः॥

अर्थात् जो कृष्णाव्यय-तत्त्व **गोपियों,** उनके पतियों एवं सम्पूर्ण जीव-धारियों के अन्तःकरणावच्छिन्न **'महान्'** के गर्भ में **'चिदाभास'** के रूप में प्रतिष्ठित है, उस **अव्ययेश्वर** ने ही क्रीड़ा से ही भू-लोक में मानुषावतार लिया है। वे **अव्ययेश्वर भगवान्** प्राकृतिक जीव-भावों पर अनुग्रह करने के लिए मानव-स्वरूप धारण कर उसके द्वारा वैसी मानुषी लीलाएँ करते रहते हैं, जिनका स्मरण कर लोक-मानव ईश्वर-परायण बन जाएँ।

हे राजन्! तुम क्या समझते हो कि **गोपियों** के बिना उनके पति-पुत्र-बन्धु आदि चिन्ताकुल बने रहे ? भूलते हो। विदित होता है, अभी तक 'शाप' के प्रभाव से तुम ईश्वरता के सन्निकट पहुँचे ही नहीं। सुनो! योग-मायी **भगवान् की योग-माया** से समन्वित हो जानेवाले उन **व्रज-गोपों** ने अपनी-अपनी पत्नियों को अपने सानिध्य में ही देखा। (फलतः तुम्हारी लोक-सम्मता अमर्यादा का तो यहाँ कोई प्रश्न ही शेष नहीं रह जाता)।

उक्त **ईश्वराव्यय-ब्रह्मानुगता रास-विहार-रात्रि** के उपरत होते ही भगवान् की आज्ञा से सभी व्रजाङ्गनाएँ स्व-स्व-गृहों की ओर परावर्तित हो गईं।

शुक मुनि के उक्त स्पष्टीकरण से हम सभी श्रद्धा-समन्विता आस्था के अनुगामी बन जाते हैं, सन्देह का प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु, इस सम्बन्ध में **महा-मुनि शुकदेव** से हम एक प्रश्न और करने की धृष्टता करना चाहते हैं। **भारतीय संस्कृति** की यही महती विशेषता है कि जिसके सम्बन्ध में **तर्क-प्रमाण-युक्ति-ज्ञान-विज्ञान** की कसौटी हो, उसी के प्रति हमें **आस्था-श्रद्धा** करनी चाहिए। नास्तिक-मत के व्याख्याता **श्री जाजलि** के प्रति **सत्ता-ब्रह्म** की सकारण व्याख्या करते हुए अन्त में **भगवान् रामचन्द्र** ने यही उद्बोधन प्रदान किया है। देखिए **'वाल्मीकि-रामायण'**—

नाकारणं हि शास्त्रेऽस्ति, धर्म्मः सूक्ष्मोऽपि जाजले!
कारणाद्धर्म्ममन्विच्छन्, स लोकानाप्नुते शुभान्॥

अर्थात् **हे जाजले! धर्म का छोटे-से-छोटा विधि-विधान भी मौलिक विज्ञान-रहस्यात्मक कारण से शून्य नहीं है। जो इस रहस्यात्मक कारण को जानता है, वही निश्चित तथ्य को प्राप्त करता है।**

हाँ, तो प्रश्न यह है कि आज के **भौतिक उपयोगिता-वाद** के भौतिक युग में ऐसी **आस्था-श्रद्धा-परायणा शरत्-काव्य-कथाओं** का मानव के वर्तमान **भौतिक जीवन की दृष्टि** से **उपयोग** क्या है? प्रश्न अत्यन्त **गम्भीर** है, **सामयिक** भी एवं सर्वथा युग-धर्मानुगत बनता हुआ **युक्ति-तर्क-सङ्गत** भी।

स्थानाभाव से उक्त प्रश्न का विस्तार से समाधान सम्भव नहीं है। उक्त प्रश्न के उत्तर अनेक हैं, किन्तु एक उत्तर ही दो शब्दों में रख रहा हूँ। आज हमारे राष्ट्रीय मानवों को राष्ट्र के नव-निर्माण में अत्यधिक श्रम करना पड़ रहा है। चिकित्सा-शास्त्र का यह सर्व-सम्मत सिद्धान्त है कि **अधिक शारीरिक-मानसिक श्रम** से, जिसे आजकल लोग **'ट्रबल'** कहते हैं, **'हृदय'** पर अर्थात् **'हार्ट'** पर—बड़ा भार अर्थात् **'प्रेशर'** पड़ता है। इसी को **'हृद्-रोग'** कहा जाता है, अथवा आज की सभ्य भाषा में-**'हार्ट-ट्रबल'**।

सम्भवत: ही क्यों, नत-मस्तक होकर बिना किसी नच-नुच के हमें यह मान लेना पड़ेगा कि इसी अधिक श्रम के कारण आज भारत राष्ट्र के राष्ट्रीय मानव '**हृद्-रोग**' से विशेष रूप से उत्पीड़ित नहीं, तो पीड़ित अवश्य हैं। **भारतीय मनो-विज्ञान** के उन मर्मज्ञ ने इस रोग की एक चिकित्सा उक्त '**शरत्-काव्य-कथा**' भी मानी है, जिनसे हमने प्रश्न किया है। अर्थात् '**शरत्-काव्य-कथा**' के **स्त्रष्टा तत्त्वज्ञ स्वयं शुकदेव मुनि** ने। हृदय की दुर्बलता से ही मन दुर्बल होता है। मानसिक दुर्बलता ही '**हृद्-रोग**' का प्रमुख कारण है। इधर '**रास-क्रीड़ा**' का सम्बन्ध **नाक्षत्रिक कृष्ण चन्द्र** से है, जो '**चन्द्रमा मनसो जात:**', '**मनश्चन्द्रेण लीयते**', '**हृत्-प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं,**' '**तन्मे मन: शिव-सङ्कल्पमस्तु**'- इत्यादि वैदिक सिद्धान्तों के अनुसार '**चान्द्र तत्त्व**' ही हमारे **हृदयस्थ मन** का उपादान माना गया है। वैसे भी सुना जाता है कि **मनो-विनोद** से भी मन को पर्याप्त बल मिलता है। ऐसे में **ऋषि-प्रज्ञा** से समन्वित '**शरत्-काव्य-कथा**'—'**रास-लीला**' से हमारा जो **मनो-विनोद** होता है, वह अन्यत्र किसी भी **सांस्कृतिक आयोजन** से हमें उपलब्ध नहीं होता। सम्भव है, यह हमारा दृष्टि-दोष ही हो। किन्तु, हमें अपने उक्त **आर्ष दृष्टि-कोण** पर ही विशेष आस्था है। स्मरण रहे, यह हमारी निरी कल्पना ही नहीं है, अपितु यह तो **समाधान-कर्त्ता श्री शुकदेव मुनि** की रहस्य-पूर्णा आर्ष-सूक्ति का अक्षरश: अनुवाद ही है। **उपयोगिता-वाद** से सम्बन्ध रखनेवाली इस सूक्ति को सुनने का अनुग्रह कीजिए। इस अन्तिम सूक्ति-पद्य से ही '**रास-पञ्चाध्यायी**' विश्रान्त हुई है—

विक्रीडितं व्रज-वधूभिरिदं च विष्णो:, श्रद्धान्वितोऽनुशृणुयादथ वर्णयेद्य:।
भक्ति-परां भगवति प्रतिलभ्य कामं, 'हृद्-रोग' माश्वपहिनोत्यचिरेण धीर:॥

अर्थात् **श्रद्धा-पूर्वक जो महा भाग्यशाली शरत्-काव्य-कथा ('रास-लीला') को सुनते या सुनाते हैं, वे निश्चय ही—शीघ्र ही अपने 'हृद्-रोग' को समूल नष्ट कर देने की क्षमता प्राप्त कर लेते हैं।**

★ ★ ★

वास्तविक काम-विजय

ऋषि-दृष्टि में **कामासक्ति के परित्याग** का ही नाम '**काम-विजय**' है, न कि कर्म-परित्याग का नाम- '**काम-विजय**'। हमारे देश के तपस्वी संन्यासी वीत-रागी की सहज परिभाषा है, जिसका आदर्श स्वयं **भगवान्** के उक्त '**रास-क्रीड़ा**' से स्थापित हुआ है। सर्व-संग्रहात्मक लोक-सौन्दर्य में निष्काम भाव से प्रतिष्ठित रहना ही '**भारतीय त्याग**' की वह मौलिक परिभाषा है, जो आज दुर्भाग्य-वश विलुप्त हो चली है।

'**त्याग**'-शब्द सापेक्ष है। '**संग्रह**' हो जाएगा, तभी '**त्याग**' होगा। बिना '**संग्रह**' के '**त्याग**' का अर्थ होगा—काय-क्लेश-मात्र का अनुगमन करते हुए, राष्ट्र में एक प्रकार की **श्री-विहीनता, शून्यता, असारता, क्षण-भङ्गुरता** की शुष्क उद्वेग-करी घोषणाओं से **संस्कृति-तत्त्व-शून्य** भ्रान्त मानवों को आकर्षित करते हुए अन्ततोगत्वा अपने आपको भी **कीनाश-निकेतन** (यम-सदन) का सम्मान्य अतिथि बना लेना।

सर्व-समृद्धि-शाली **अध्यात्म-निष्ठ भारत-राष्ट्र** में ऐसा ही कुछ घटित-विघटित हुआ है। इसके दुष्परिणाम-स्वरूप जगन्मिथ्यात्व-मूलक उक्त '**त्याग**' ने हमें अपने **ज्ञान-सह-कृत विज्ञान** से वञ्चित किया। महद्-भाग्य से पुन: हमारे राष्ट्र ने विलुप्त वैभव प्राप्त किया है। अतएव अत्यन्त सावधानी से निष्ठा-पूर्वक अपने राष्ट्र की **चिरन्तना अध्यात्म-निष्ठा को मूलाधार बनाते हुए** हमें **अपने सम्मिलित राष्ट्रीय प्रयास से राष्ट्र को उत्तरोत्तर पुष्पित-पल्लवित** करना है।

'वर्ण-माला' में :

श्रीराधा-अष्टमी (६ सितम्बर, २०००) के पावन अवसर पर

श्रीराधा-षडक्षर-मन्त्र-साधना

विनियोग—ॐ अस्य श्रीराधा-षडक्षर-मन्त्रस्य श्रीनारायणः ऋषिः। गायत्री छन्दः। श्रीराधा देवता। स्त्रीं बीजं। ह्रीं शक्तिः। सर्व-कामना-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगः।

ऋष्यादि-न्यास—श्रीनारायण-ऋषये नमः शिरसि। गायत्री-छन्दसे नमः मुखे। श्रीराधा-देवतायै नमः हृदि। स्त्रीं-बीजाय नमः लिङ्गे। ह्रीं-शक्तये नमः नाभौ। सर्व-कामना-सिद्ध्यर्थे जपे विनियोगाय नमः अञ्जलौ।

ध्यान— **श्वेत-चम्पक-वर्णाभां शरदिन्दु-समाननाम्,**
कोटि-चन्द्र-प्रतीकाशां शरदम्भोज-लोचनाम्।
सुकुमाराङ्ग-लतिकां रास-मण्डल-मध्यगाम्,
वराभय-करां शान्तां शश्वत्-सुस्थिर-यौवनाम्।
रत्न-सिंहासनासीनां गोपी-मण्डल-नायिकाम्,
कृष्ण-प्राणाधिकां वेद-बोधितां परमेश्वरीम्॥

मानस पूजा— लं पृथिव्यात्मकं गन्धं समर्पयामि नमः। हं आकाशात्मकं पुष्पं समर्पयामि नमः। यं वाय्वात्मकं धूपं घ्रापयामि नमः। रं वह्न्यात्मकं दीपं दर्शयामि नमः। वं अमृतात्मकं नैवेद्यं निवेदयामि नमः। सं सर्वात्मकं ताम्बूलं समर्पयामि नमः।

मन्त्र— श्रीराधायै स्वाहा। (६ अक्षर)

'वर्ण-माला' में उक्त मन्त्र का **'जप'** निम्न प्रकार करे। यथा—

ॐ
१ अं श्रीराधायै स्वाहा अं
२ आं श्रीराधायै स्वाहा आं
३ इं श्रीराधायै स्वाहा इं
४ ईं श्रीराधायै स्वाहा ईं
५ उं श्रीराधायै स्वाहा उं
६ ऊं श्रीराधायै स्वाहा ऊं
७ ऋं श्रीराधायै स्वाहा ऋं
८ ॠं श्रीराधायै स्वाहा ॠं
९ लृं श्रीराधायै स्वाहा लृं
१० ॡं श्रीराधायै स्वाहा ॡं
११ एं श्रीराधायै स्वाहा एं
१२ ऐं श्रीराधायै स्वाहा ऐं
१३ ओं श्रीराधायै स्वाहा ओं
१४ औं श्रीराधायै स्वाहा औं
१५ अं श्रीराधायै स्वाहा अं
१६ अः श्रीराधायै स्वाहा अः
१७ कं श्रीराधायै स्वाहा कं
१८ खं श्रीराधायै स्वाहा खं
१९ गं श्रीराधायै स्वाहा गं
२० घं श्रीराधायै स्वाहा घं
२१ ङं श्रीराधायै स्वाहा ङं
२२ चं श्रीराधायै स्वाहा चं
२३ छं श्रीराधायै स्वाहा छं
२४ जं श्रीराधायै स्वाहा जं
२५ झं श्रीराधायै स्वाहा झं
२६ ञं श्रीराधायै स्वाहा ञं
२७ टं श्रीराधायै स्वाहा टं
२८ ठं श्रीराधायै स्वाहा ठं
२९ डं श्रीराधायै स्वाहा डं
३० ढं श्रीराधायै स्वाहा ढं
३१ णं श्रीराधायै स्वाहा णं

३२ तं श्रीराधायै स्वाहा तं
३३ थं श्रीराधायै स्वाहा थं
३४ दं श्रीराधायै स्वाहा दं
३५ धं श्रीराधायै स्वाहा धं
३६ नं श्रीराधायै स्वाहा नं
३७ पं श्रीराधायै स्वाहा पं
३८ फं श्रीराधायै स्वाहा फं
३९ बं श्रीराधायै स्वाहा बं
४० भं श्रीराधायै स्वाहा भं
४१ मं श्रीराधायै स्वाहा मं
४२ यं श्रीराधायै स्वाहा यं
४३ रं श्रीराधायै स्वाहा रं
४४ लं श्रीराधायै स्वाहा लं
४५ वं श्रीराधायै स्वाहा वं
४६ शं श्रीराधायै स्वाहा शं
४७ षं श्रीराधायै स्वाहा षं
४८ सं श्रीराधायै स्वाहा सं
४९ हं श्रीराधायै स्वाहा हं
५० ळं श्रीराधायै स्वाहा ळं

*

क्षं

५१ ळं श्रीराधायै स्वाहा ळं
५२ हं श्रीराधायै स्वाहा हं
५३ सं श्रीराधायै स्वाहा सं
५४ षं श्रीराधायै स्वाहा षं
५५ शं श्रीराधायै स्वाहा शं
५६ वं श्रीराधायै स्वाहा वं
५७ लं श्रीराधायै स्वाहा लं
५८ रं श्रीराधायै स्वाहा रं
५९ यं श्रीराधायै स्वाहा यं
६० मं श्रीराधायै स्वाहा मं
६१ भं श्रीराधायै स्वाहा भं
६२ बं श्रीराधायै स्वाहा बं
६३ फं श्रीराधायै स्वाहा फं
६४ पं श्रीराधायै स्वाहा पं
६५ नं श्रीराधायै स्वाहा नं
६६ धं श्रीराधायै स्वाहा धं
६७ दं श्रीराधायै स्वाहा दं
६८ थं श्रीराधायै स्वाहा थं
६९ तं श्रीराधायै स्वाहा तं

७० णं श्रीराधायै स्वाहा णं
७१ ढं श्रीराधायै स्वाहा ढं
७२ डं श्रीराधायै स्वाहा डं
७३ ठं श्रीराधायै स्वाहा ठं
७४ टं श्रीराधायै स्वाहा टं
७५ ञं श्रीराधायै स्वाहा ञं
७६ झं श्रीराधायै स्वाहा झं
७७ जं श्रीराधायै स्वाहा जं
७८ छं श्रीराधायै स्वाहा छं
७९ चं श्रीराधायै स्वाहा चं
८० ङं श्रीराधायै स्वाहा ङं
८१ घं श्रीराधायै स्वाहा घं
८२ गं श्रीराधायै स्वाहा गं
८३ खं श्रीराधायै स्वाहा खं
८४ कं श्रीराधायै स्वाहा कं
८५ अः श्रीराधायै स्वाहा अः
८६ अं श्रीराधायै स्वाहा अं
८७ औं श्रीराधायै स्वाहा औं
८८ ओं श्रीराधायै स्वाहा ओं
८९ ऐं श्रीराधायै स्वाहा ऐं

९० एं श्रीराधायै स्वाहा एं
९१ लृं श्रीराधायै स्वाहा लृं
९२ ॡं श्रीराधायै स्वाहा ॡं
९३ ॠं श्रीराधायै स्वाहा ॠं
९४ ऋं श्रीराधायै स्वाहा ऋं
९५ ऊं श्रीराधायै स्वाहा ऊं
९६ उं श्रीराधायै स्वाहा उं
९७ ईं श्रीराधायै स्वाहा ईं
९८ इं श्रीराधायै स्वाहा इं
९९ आं श्रीराधायै स्वाहा आं
१०० अं श्रीराधायै स्वाहा अं
१०१ अं श्रीराधायै स्वाहा अं
१०२ कं श्रीराधायै स्वाहा कं
१०३ चं श्रीराधायै स्वाहा चं
१०४ टं श्रीराधायै स्वाहा टं
१०५ तं श्रीराधायै स्वाहा तं
१०६ पं श्रीराधायै स्वाहा पं
१०७ यं श्रीराधायै स्वाहा यं
१०८ शं श्रीराधायै स्वाहा शं

* * *

'राधा' का अर्थ

।।श्रीराधिका उवाच।।

'रा'-शब्दश्च महा-विष्णुः, विश्वानि यस्य लोमसु।
विश्व-प्राणिषु विश्वेषु, धा धात्री मातृ-वाचकः।।
धात्री माताऽहमेतेषां, मूल - प्रकृतिरीश्वरी।
तेन 'राधा' समाख्याता, हरिणा च पुरा बुधैः।।

अर्थात् स्वयं श्रीराधिका जी कहती हैं— 'जिनके रोम-कूपों में अनेक विश्व हैं, वे महा-विष्णु ही **'रा'**-शब्द हैं और **'धा'** विश्व के प्राणियों तथा लोक में मातृ-वाचक धाय है। मैं इनकी **माता, मूल-प्रकृति** और **ईश्वरी** हूँ। इसीलिए पूर्व-काल में श्रीहरि तथा विद्वानों ने मेरा नाम **'राधा'** रखा है।

साधक का संवाद

३. व्यापकता

देश जाते हुए या वहाँ से कलकत्ते आते हुए जब-जब मैं **विन्ध्याचल** से होकर निकला हूँ, मैंने **विन्ध्याचल** में उतरकर **माँ का दर्शन** अवश्य किया है और **'त्रिकोण' की यात्रा** भी अवश्य की है। **विन्ध्याचल** में निस्सन्देह वैसा कोई आकर्षण नहीं है—न तो वहाँ की बस्ती ही विशेष सुन्दर है, **गङ्गा-तट** भी रम्य नहीं है, **माँ का मन्दिर** भी भव्य एवं विशाल नहीं है और न **'त्रिकोण-यात्रा'** का मार्ग तथा उसमें पड़नेवाली पहाड़ी ही मनोरम या आतङ्क-जनक है, तथापि यही सब मेरे मन को सदैव आकृष्ट किए रहा है और अब तो अर्थात् जब से माँ ने अपनी सेवा में ले लेने की कृपा की है, वह मेरे लिए इस **पवित्र भारत-भूमि** में परम कल्याण-प्रद स्थान हो गया है। यहाँ पहुँचने पर मेरे मन को जो शान्ति प्राप्त होती है, उसका वर्णन मैं नहीं कर सकता। दुर्भाग्य से इस बार देश आते समय मैं **विन्ध्याचल** नहीं उतर सका। वैसा झमेला ही पड़ गया था, परन्तु जब कलकत्ते फिर जाने लगा, तब मैं **विन्ध्याचल** में सदा की भाँति उतर पड़ा। स्टेशन पर मेरी भेंट **सेठ बिहारीलाल** से हो गई। मुझे देखते ही **सेठ जी** ने कहा—अच्छा, **शर्मा जी** हैं? खूब आए।

मैंने कहा—कुशल तो है!

उन्होंने कहा— **माई के दरबार** में भी कुशल न होगी, तो कहाँ होगी? बात यह है कि एक **महन्त जी** साथ हैं। वे यहाँ **सविधि पूजन** करना चाहते हैं और यहाँ के लोगों का हाल आप जानते ही हैं। सवेरे से इसी फेर में हूँ। अभी तक कोई व्यवस्था नहीं हो सकी।

मैंने हँसकर कहा—इसमें कठिनाई की क्या बात है? मैं सब प्रबन्ध अभी किए देता हूँ।

'पहले आप सब समझ तो लें। वे चाहते हैं कि जो लोग आमन्त्रित किए जाएँ, सभी **अभिषिक्त** हों और शक्तियाँ भी **अभिषिक्त** ही बुलाई जाएँ।'

मैंने कहा—यह पता लगाना कि कौन **अभिषिक्त** है, कौन नहीं, बहुत कठिन है। **शक्तियों** की बात उठाना तो बेकार होगा। खैर, एक सज्जन हैं। मैं उनसे मिलकर बताऊँगा कि प्रबन्ध हो सकेगा या नहीं। यह तो बताओ, **महन्त जी** कहाँ हैं और आप कहाँ ठहरे हैं?

'हम दोनों ही **अमेठी के बाग** में ठहरे हैं।'

मैंने कहा—अच्छा, आप चलें। पूजन-दर्शन करके मैं शीघ्र ही आता हूँ।

पण्डे के घर जाकर सामान रखकर **स्नान-पूजन** किया। फिर **माई के दरबार** में गया। दर्शन करने के बाद मैं **मैथिल जी** के यहाँ पहुँचा। मैंने सोचा कि **सेठ जी** का काम बिना उनकी सहायता के नहीं हो सकेगा। **मैथिल जी** विन्ध्याचल में प्रसिद्ध साधकों में थे और वे मुझ पर कृपा भी करते थे। उनके घर पहुँचने पर जब मैंने चरण-स्पर्श कर उनका अभिवादन किया, तब उन्होंने बड़े स्नेह से आशीर्वाद देकर कहा—अरे! **शर्मा जी** हैं! कब आए?

'आज की गाड़ी से अभी-अभी आया हूँ। मेरे एक मित्र भी आए हैं। उनका कुछ काम है।'

'कैसा काम है?'

'उनके साथ एक **महन्त जी** हैं। वे पूजन करना चाहते हैं। उसके लिए ऐसे साधकों की जरूरत है, जो **अभिषिक्त** हों। वे **शक्तियों** को भी बुलाना चाहते हैं।'

मैथिल महाराज ने हँसकर कहा—ऐसे साधक मिल गए?

'उसी के लिए तो मैं आपके पास आया हूँ।'

मैथिल महाराज ने सोचते हुए कहा—ऐसे तो यहाँ इने गिने ही लोग हैं और जो हैं, वे किसी के पूजन में आते-जाते नहीं। **अभिषिक्त शक्तियाँ** तो कदाचित् ही प्राप्त हो सकें।

'तब क्या किया जाए?'

'यही तो सोच रहा हूँ। **महन्त जी** कहाँ के निवासी हैं? क्या स्वयं वे **अभिषिक्त** हैं?'

'यह मैं क्या जानूँ? स्टेशन पर कलकत्ते के एक **सेठ जी** से भेंट हो गई। वे मेरे मित्र हैं। **महन्त जी** के ही साथ आए हैं। उन्होंने मुझसे यह सब कहा। वे और **महन्त जी अमेठी के बाग** में ठहरे हैं। मैंने **सेठ जी** से कहा कि तुम चलो, मैं प्रयत्न करता हूँ। शायद काम हो जाए।'

'आपने यह व्यर्थ ही झंझट मोल ले ली। यह तो **माई का दरबार** है। बड़े-बड़े साधक यहाँ आते रहते हैं, परन्तु इस तरह का विभेद कोई नहीं करता। उनसे कहो, जो भी साधक मिलें, उनको लेकर अपना **पूजन-अर्चन** करें। यहाँ इस प्रकार का बितण्डा न खड़ा करें।'

मैं अब क्या कह सकता था! उन्हीं तक मेरी पहुँच थी। उनको प्रणाम कर चुपचाप चला आया। वहाँ से **अमेठी के बाग** में गया और **सेठ जी** को सारा हाल बताया। वे मुझे **महन्त जी** के पास ले गए। मैंने **महन्त जी** को सविधि प्रणाम किया। **सेठ जी** ने मेरा परिचय उन्हें दिया। उन्होंने आदर-पूर्वक अपने समीप ही बैठाया। उनसे भी मैंने **मैथिल महाराज** की बातचीत सारी-की-सारी कह दी। उसे सुनकर वे हँस पड़े। उन्होंने कहा—**शर्मा जी,** यहाँ आकर भी यदि मेरी मनो-कामना पूरी न होगी, तो फिर कहाँ होगी? क्या **मैथिल महाराज** से मेरी भेंट हो सकेगी?

'क्यों नहीं? आपकी आज्ञा हो, तो उन्हें बुला लाऊँ।'

'नहीं-नहीं। यह ठीक नहीं है। मेरा काम है। उनके यहाँ मैं स्वयं चलूँगा। क्या आप वहाँ मुझे ले चलेंगे?'

'मैं तैयार हूँ। चलिए। मैं उन्हें घर पर ही छोड़कर आया हूँ।'

महन्त जी उठ खड़े हुए। हम तीनों **मैथिल जी** के यहाँ पहुँचे। मैंने भीतर जाकर कहा— **महन्त जी** आपसे मिलने आए हैं।

मैथिल जी कहीं जाने को तैयार थे। वे मेरे साथ ही बाहर निकल आए। उन्होंने **महन्त जी** को बड़ी आव-भगत से लिया और अपना कमरा खोलकर भीतर ले गए। जब सब लोग बैठ गए तब **मैथिल जी** ने **महन्त जी** से हाथ जोड़कर कहा—आज्ञा दीजिए। मैं आपकी क्या सेवा करूँ?

महन्त जी ने बहुत ही मधुर ढङ्ग से कहा—**पण्डित जी,** मेरा आपसे एक प्रश्न है। वह यह कि इस **दरबार** में आकर क्या मेरी इच्छा पूरी न होगी?

मैथिल जी बड़े तपाक से बोले—ऐसा तो यहाँ कभी नहीं हुआ है। इस **दरबार** से तो कोई निराश होकर कभी नहीं गया है!

मेरी ओर सङ्केत करके **महन्त जी** ने कहा—इन्होंने मुझसे जो कहा है, उससे तो मुझे यही जान पड़ा था कि मेरी इच्छा की पूर्ति न होगी।

'परन्तु **जगदम्बा** ने, जान पड़ता है, आपकी पुकार सुन ली है। अभी-अभी मुझे पता मिला है कि **अवधूत जी** आ गए हैं। उनकी कृपा से आपकी इच्छा के अनुसार आपका काम पूरा हो

जाएगा। मैं उनसे मिलने जा रहा हूँ। आप भी चलें और उनसे कहें। वे बहुत बड़े **महात्मा** हैं और यहाँ के सभी लोग उनका बहुत अधिक सम्मान करते हैं।'

महन्त जी ने कहा—यह आपकी कृपा है। हम लोग आपके साथ चलेंगे। चलिए। कहाँ चलना होगा?

'पहाड़ पर। **अष्ट-भुजा** के पास ही उनकी कुटिया है।' यह कहकर वे उठ खड़े हुए। हम लोग उनके साथ ही कमरे के बाहर निकल आए। सड़क पर पहुँचकर दो इक्के करके पहाड़ को चले। वहाँ पहुँचने पर पहले जाकर **'अष्ट-भुजा'** का दर्शन किया। उसके बाद **अवधूत-जी** की कुटी में गए। वे उस समय अकेले ही थे। हम सबने उनका अभिवादन किया। **मैथिल जी** ने हम लोगों का उन्हें परिचय दिया। **अवधूत महाराज** ने हम सबका कुशल पूछा। इसके बाद उनकी **मैथिल जी** से बातचीत प्रारम्भ हुई। उसी सिलसिले में उन्होंने **महन्त जी** के सङ्कल्प की बात कही। **अवधूत जी** ने कहा—बहुत सुन्दर विचार है।

फिर **महन्त जी** की ओर मुँह करके पूछा—आपके मठ में मैं रह चुका हूँ। आपके गुरु **स्वामी परमानन्द** ऊँचे दर्जे के साधक थे। आपके अच्छे दर्शन हुए। कहिए, आप कहाँ पूजन करेंगे? कितने साधकों को बुलाना चाहते हैं? यह **माई का दरबार** है। आपकी मनो-कामना अवश्य पूरी होगी।

महन्त जी ने पुलकित होकर कहा—तो आप मेरे यहाँ हो आए हैं! कदाचित् यह बहुत पहले की बात है। मुझे विश्वास है, आप मुझे अपनाएँगे। **माई की दया** से आपके अलभ्य दर्शन हो गए। अब मेरा उद्देश्य अवश्य ही सिद्ध होगा।

अवधूत जी की वेश-भूषा आडम्बर-हीन थी, बातचीत में भी वे बड़े मधुर जान पड़े। फलतः अवसर पाते ही मैंने विनम्रता के साथ पूछा—**शाक्त-धर्म** का आज यह पराभव क्यों है?

मेरी ओर मुँह करके **अवधूत-जी** ने गम्भीरता से कहा—पराभव! किसका? **शाक्त-धर्म** का? ऐसा तो नहीं है। घर-घर **चण्डी का पाठ** होता रहता है, समय-समय पर **शत-चण्डियाँ** और **सहस्र-चण्डियाँ** होती रहती हैं। जो धर्म **वैदिक धर्म** का स्थानापन्न होकर सदियों से आर्य-जाति को सजीव बनाए हुए है, उसका पराभव! भाई, सोचो तो, यह क्या कह रहे हो? मैंने इस पवित्र भूमि का पर्यटन किया है। जहाँ-जहाँ गया हूँ, ब्राह्मण-क्षत्रिय-वैश्य-शूद्र—यहाँ तक कि चोरों और बदमाशों तक को **जगदम्बा के नाम का श्रद्धा के साथ स्मरण** करते पाया। मैं तो यह कहूँगा कि जैसा शास्त्र में यह इस **'युग का धर्म'** निर्धारित किया गया है, वैसा ही इसका देश में व्यापक रूप से प्रचार है। मेरी तो यह दृढ़ धारणा है कि **'शाक्त-धर्म'** आज कहीं अधिक उन्नत दशा में है। उन्नत क्या—**वल्लभाचार्य, तुलसीदास** और **गुरु गोविन्दसिंह** आदि महात्माओं ने तो **'शाक्त-धर्म'** को जनता का धर्म बना दिया है। **सीता-राम, राधा-कृष्ण** और **चण्डी** की जो महिमा आज सारे देश में व्याप्त है, वह क्या **'शाक्त-धर्म'** के पराभव का लक्षण है? और अब रही **'शाक्त-धर्म'** की विचार-धारा की बात, सो इधर उसकी जितनी महिमा बढ़ी है, वह कम उत्साह-जनक नहीं है। **उडरफ साहब** जैसे विदेशी निष्ठावान् व्यक्तियों का **'शाक्त-साधना'** को अङ्गीकार करना उसके महत्त्व को ही सूचित करता है और यह उसका महत्त्व ही है कि जगह-जगह से सु-सम्पादित होकर **'तन्त्र-साहित्य'** आज प्रकाश में आ रहा है और आपने जो उसकी निन्दा होने की बात कही है, सो निन्दा किसकी नहीं है? **वेद, बाइबिल, कुरान**—किसकी निन्दा नहीं की गई है? यह तो आसुरी सम्पत्ति का प्रभाव है। यदि यह न हो, तो दैवी सम्पत्ति का अनुभव कैसे हो?

यह कहते-कहते **अवधूत जी** गद्‌गद् हो गए। उन्होंने अपना कथन ऐसे आवेश के साथ समाप्त

किया कि मैं दङ्ग रह गया और फिर मैं उनसे कुछ न पूछ सका। उन्होंने **मैथिल जी** को सम्बोधित करके कहा—**मैथिल जी,** मैं **रामेश्वर जी** गया था। कहते हैं दक्षिण में **'शाक्त-धर्म'** का वैसा प्रचार नहीं है, पर यह भ्रम है। **'कन्या-कुमारी'** और मदुरा की **'मीनाक्षी'** के झण्डे जहाँ आकाश में लहरा रहे हों, वह **'शाक्त-भूमि'** नहीं, तो और क्या हो सकती है? मैं तो भाई, यही कहूँगा कि **'शाक्त-धर्म'** दिन-प्रतिदिन उन्नति ही कर रहा है।

यह देखकर कि सूर्यास्त का समय समीप आ रहा है, **महन्त जी** ने कहा— मुझको क्या आज्ञा होती है?

'आज्ञा क्या? आपकी आज्ञा का पालन होगा। क्यों **मैथिल जी?'**

मैथिल जी ने कहा— जो आदेश करेंगे, वही होगा।

अवधूत जी ने कहा—परसों का दिन ठीक होगा। **अमावास्या** भी है। सभी लोगों को तब तक सूचना भी हो जाएगी।

मैथिल जी ने कहा—आपका विचार बहुत ठीक है और स्थान?

'आपका घर सबसे अच्छा है। **माँ के चरणों के पास ही पूजन** करना उत्तम होगा।'

इन बातों से **महन्त जी** को बहुत प्रसन्नता हुई। उन्होंने कहा— मेरी मनो-कामना आपने पूर्ण कर दी। अब आज्ञा दीजिए। **पूजा की बेला** आ गई है। कल फिर सेवा में उपस्थित होऊँगा।

'सो यह नहीं होगा। यहीं **पूजा-अर्चा** जो कुछ करनी हो, कीजिए। सब प्रबन्ध हो जाएगा।' यह कहकर **अवधूत जी** ने मेरी ओर देखकर कहा— **महन्त जी** तो मेरे मित्र के उत्तराधिकारी हैं, **सेठ जी** उनके भक्त हैं, **मैथिल जी** को मैंने बुलाया ही है। यदि आप चाहें, तो इन महानुभावों का आतिथ्य करने का सौभाग्य पा सकता हूँ।

मैंने कहा—आपका यह अनुरोध कम-से-कम मेरे सौभाग्य का सूचक है।

यह कहकर मैंने **महन्त जी** की ओर देखा। उन्होंने कहा— इसमें क्या सन्देह। **अवधूत जी** के आदेश का हम कैसे पालन न करेंगे?

उनसे ऐसा कहकर हम लोग **भैरव-कुण्ड** पर चले गए और वहाँ से सन्ध्या-वन्दन आदि से निवृत्त होकर **अवधूत जी** की कुटी में फिर आ गए। तब तक काफी अँधेरा हो गया था। **अवधूत जी** भी अपने **पूजन-यजन** में लगे हुए थे। कोई आध घण्टे के बाद वे **पूजा से निवृत्त** हुए। उन्होंने कहा —अच्छा, अब आओ, चलें। **पूजन** का प्रबन्ध अन्यत्र किया गया है।

यह कहकर वे उठकर चल पड़े। उनके पीछे **मैथिल जी** हो गए और उनका अनुसरण हम लोगों ने किया। **विन्ध्य-गिरि** पर जो बँगले इधर कुछ समय से नए-नए बने हैं, उन्हीं एक में हम लोग पहुँचे। गृह-स्वामी ने हम लोगों का उठकर स्वागत किया। यहाँ **अवधूत जी** ने **जगदम्बा का पूजन** किया और हम सब लोगों को प्रसाद मिला। इस अवसर पर पूजा के सम्बन्ध में **महन्त जी** से उनकी खूब बातें हुईं। **महन्त जी** ने **अवधूत जी** से सबसे पहले यही प्रश्न किया कि **'बिना शक्ति के क्या यह पूजन हो सकता है?'**

अवधूत जी ने कहा—क्यों नहीं हो सकता? अभी किया ही है। प्रतिनिधि किस दिन के लिए हैं? फिर **शक्ति** के सहित पूजा करने की क्षमता तो चाहिए।

'क्षमता तो पूजा करने से ही प्राप्त होगी।' **महन्त जी** ने हँसकर कहा।

'ठीक है, पर सर्वाङ्ग-पूर्ण पूजा करने के लिए धीरे-धीरे ही अग्रसर होना पड़ेगा। लोग **'भूत-शुद्धि'** तक करते नहीं, **'पात्र'** कैसे स्थापित किए जाते हैं, उनका **'विसर्जन'** कैसे किया जाता है, इन बातों का ज्ञान नहीं रखते, पर **'चक्रेश्वर'** बनेंगे अवश्य!'

मैथिल जी ने कहा—आप ठीक कहते हैं। पिछले **'नवरात्र'** में एक राजा साहब ने बड़े आयोजन के साथ यहाँ अर्चन किया था। मुझे भी उसमें जाना पड़ा था। मैंने देखा कि **चक्रेश्वर जी** ने **'प्रोक्षणी पात्र'** ठीक जगह पर स्थापित नहीं किया था और **पात्रों के विसर्जन** में भी उन्होंने गड़बड़ कर दिया। भूतनाथ ने जब **'वीर-पात्र'** का अपना भाग माँगा, तब वे उसकी बात ही न समझ सके।

सेठ जी ने पूछा—उन्होंने कैसा भाग माँगा था?

अवधूत जी ने कहा—पूजन में जो **'पात्र'** स्थापित किए जाते हैं, उनके **'विसर्जन'** का विधान है। **'वीर-पात्र'** का विसर्जन इस प्रकार होता है कि उसका द्रव्य उपस्थित वीरों को वितरित कर दे।

महन्त जी बोले—इस प्रकार पूजन तो सभी नहीं कर सकते। अभी आपने पूजन में **'आवाहन'** आदि जिस ढङ्ग से किया है, वह कदाचित् ही कोई जानता होगा। **'पाँच मुद्राएँ'** तो मुझे मालूम हैं, परन्तु उसके बाद आपने किस तरह क्या किया, वह सब मेरी समझ में नहीं आया।

'यह सब उतना कठिन नहीं है। सीखने से सब आ जाता है। आपको यदि अपने **गुरुदेव का सत्सङ्ग** अधिक समय तक मिला होता, तो यह क्या और भी बहुत कुछ मिल गया होता। वे एक ऊँची श्रेणी के साधक थे। यही नहीं, वे **नित्य पूजन** करते थे और **सर्वाङ्ग-पूर्ण पूजन** करते थे और सच पूछो, तो हम सबको **सर्वाङ्ग-पूर्ण पूजन** ही करना चाहिए, परन्तु हम तो देखते हैं कि इस ओर से वे साधक तक कुछ समय के बाद उदासीन हो जाते हैं, जिन पर **जगदम्बा की कृपा** हो जाती है।'

'इसी से मैं सब किसी के साथ पूजन नहीं करता हूँ। जो कुछ अपने को ज्ञात है, उसी से सन्तुष्ट रहकर **माँ की सेवा** में लगा रहता हूँ।'

'पर मैं आपके इस विचार से सहमत नहीं हूँ। आप तो **मठाधीश** हैं। यदि इस प्रकार दूर-दूर रहेंगे, तो लोक-संग्रह का काम कैसे होगा? मैं तो **शाक्त-साधकों** को बड़ी छूट देता हूँ। जिसने **गुरु-मुख से माँ का बीज-मन्त्र** प्राप्त कर लिया, वह तो मेरे निकट **शिव-तुल्य** हो गया। इसमें भेद-भाव करना ठीक नहीं। यदि हम लोग सविधि पूजन करेंगे और उसमें यदि हम उन्हें भी शामिल करेंगे, तो हानि किसी की नहीं होगी।'

पूजन समाप्त हो गया था। हम लोगों ने विदा माँगी। **अवधूत जी** ने गृह-स्वामी की ओर देखा। उन्होंने कहा—मोटर तैयार खड़ी है।

उसी पर सवार होकर हम लोग **विन्ध्याचल** आए। मार्ग में **महन्त जी ने अवधूत जी** की बड़ी प्रशंसा की और कहा कि कल भी उन्हीं के आदेशानुसार पूजन का आयोजन होगा। हम लोगों को **अमेटी के बाग** के पास उतारकर मोटर लौट गई। मैं **मैथिल जी** के साथ उनके घर चला गया।

दूसरे दिन मुझे कलकत्ते से तार मिला। फलतः मैं तार लेकर **बिहारीलाल जी** के पास गया और कहा—देखिए, यह तार आ गया है।

बिहारीलाल जी ने तार देखकर कहा—तब तो तुम्हें जाना ही पड़ेगा। कोई चिन्ता नहीं। आपकी कृपा से सब प्रबन्ध हो ही गया है।

महन्त जी से बिना मिले ही उनसे विदा माँगकर मैंने स्टेशन की राह ली। मुझे इस बात का अवश्य दुःख हुआ कि मैं उस **पूजा** के लिए रुक न सका।

(क्रमशः)

* * *

अमोघ लघु प्रयोग

नवार्ण-मन्त्र : ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे (९)

'ऐं' बीजमादीन्दु - समान - दीप्तिम्। **'ह्रीं'** सूर्य - तेजो-द्युतिं द्वितीयम्।।
'क्लीं' - मूर्तिः वैश्वानर - तुल्य - रूपम्। तृतीयमानन्द-सुखाय चिन्त्यम्।।१
'चां' शुद्ध - जाम्बु - वत् - कान्ति-तुर्यम्। **'मुं'** पञ्चमं रक्त-तरं प्रकल्प्यम्।।
'डां' षष्ठमुग्रार्ति - हरं सु - नीलम्। **'यैं'** सप्तमं कृष्ण - तरं रिपुघ्नम्।।२
'विं' पाण्डुरं चाष्टममादि - सिद्धिम्। **'चें'** धूम्र - वर्णं नवमं विशालम्।।
एतानि बीजानि नवात्मकस्य। जपेत् प्रद्युः सकल - कार्य - सिद्धिम्।।३

विधि : सकल **कार्य की सिद्धि - सफलता** हेतु, **लक्ष्मी - प्राप्त्यर्थ** या किसी कार्य में **विघ्न को हटाने के लिए** यहाँ ऊपर छोटा - सा, लेकिन **अमोघ प्रयोग** प्रस्तुत है। उक्त ३ श्लोकों का कम-से-कम **१०८ पाठ** नित्य प्रातः - सायं, **घृत - दीपक** के सामने, **रक्त - आसन** पर बैठकर, **२१ दिनों** तक करे। यह 'साधना' **शुक्ला अष्टमी** अथवा किसी भी **शुभ दिन** से प्रारम्भ की जा सकती है।

'नवार्ण - मन्त्र' की **'दीक्षा'** प्राप्त कर मन्त्र का **'जप'** भी किया जा सकता है, किन्तु जब तक **'दीक्षा'** प्राप्त न हो, तब तक **मात्र उक्त तीन श्लोकों का पाठ** कर लाभ उठाया जा सकता है।

* * *

मन्त्र-मातृका-पुष्प-माला-स्तोत्र

'चण्डी' वर्ष ५६, अङ्क २, श्रीशङ्कराचार्य-अङ्क, पृष्ठ ७६-८१ पर **'मन्त्र-मातृका-पुष्प-माला-स्तोत्र'** छपा है। इस स्तोत्र का **१५ वाँ श्लोक** प्रेस की असावधानी के कारण अस्पष्ट है। पाठकों द्वारा ध्यान दिलाने पर यह श्लोक यहाँ पुनः प्रस्तुत है। आशा है, पाठक-बन्धु प्रेस द्वारा हुई असावधानी के लिए क्षमा करेंगे। स्पष्ट रूप में श्लोक १५ इस प्रकार है—

ह्रीं-कार-त्रय-सम्पुटेन मनुनोपास्ये! त्रयी मौलिभि—
र्वाक्यैर्लक्ष्य-तनो तप-स्तुति-विधौ को वा क्षमेताम्बिके!
संल्लापाः स्तुतयः प्रदक्षिण-शतं सञ्चार एवास्तु ते,
सम्वेशो नमसः सहस्रमखिलं त्वत्-प्रीतये कल्पताम्।।१५

'अजपा-जप'-साधना का रहस्य

'अजपा'-साधन की उपयोगिता

अति प्राचीन काल से ही आध्यात्मिक साधना के लिए **'जप'** की महिमा बहुत प्रसिद्ध रही है। आध्यात्मिक कर्मों के बीच **'जप'** का स्थान अत्यन्त उच्च रहा है। **'यज्ञ'** तो नाना प्रकार हैं एवं प्रत्येक **'यज्ञ'** का विशेष फल भी मिलता है। किन्तु **'जप'**-यज्ञ का माहात्म्य अन्य यज्ञों की अपेक्षा बहुत अधिक है।

'जप' के वास्तविक विज्ञान को न जानने पर भी **'जप'** के सम्बन्ध में सामान्य ज्ञान सभी **'जप'**-साधकों को है। किन्तु **'अजपा-जप'** के सम्बन्ध में अनेक साधक विशेष नहीं जानते हैं। **'अजपा'-साधन** की उपयोगिता स्त्री और पुरुष, बालक और वृद्ध, भावुक और भाव-हीन सभी के लिए है। विभिन्न युगों में, विभिन्न सम्प्रदायों में यह साधना विभिन्न नामों से परिचित रही है। आध्यात्मिक साधना के क्रमिक इतिहास के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है।

अत्यन्त सरल साधना—'अजपा-जप'

देखने में यह साधना अत्यन्त सरल साधना है, इसमें कोई सन्देह नहीं। वस्तुतः कोई साधना इससे सरल हो ही नहीं सकती। मनुष्य के देह धारण करने के बाद से ही अर्थात् मातृ-गर्भ से भूमिष्ठ होने के समय से प्रयाण-काल पर्यन्त समस्त जीवन के मध्य स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास क्रिया चलती रहती है। उसी को मूल-भित्ति मानकर **'अजपा-साधन'** अनुष्ठित होता है। इसके लिए कोई विशेष उपकरण, कृत्रिम प्रक्रिया, अनुशासन आदि आवश्यक नहीं हैं। जिस प्रकार जान-अनजान में श्वास-प्रश्वास सब समय प्रवाहित होता रहता है, उसी प्रकार श्वास-प्रश्वास के साथ संश्लिष्ट **'अजपा-क्रिया'** जागृत-स्वप्न और सुषुप्ति सर्व-काल सम-रूप से चलती रहती है। यह क्रिया अपने आप निरन्तर चलती रहती है। अतएव यह अत्यन्त सरल साधन है, इसे समझने में कोई असुविधा नहीं है।

सरल होने पर भी यह साधना अत्यन्त निगूढ़ है। इसका विज्ञान एक गम्भीर रहस्य है। इसका फल अन्य कृत्रिम साधना के अनुरूप नहीं होता है। वस्तुतः निष्क्रिय परम-सत्ता के हृदय को आश्रय कर जो क्रिया विश्व के मध्य निरन्तर चलती है, **'अजपा'**—मनुष्य के देह में उसी की प्रतिच्छाया मात्र है। यह स्वभाव की साधना है। प्रकृति के मध्य व्यष्टि-भूमि में एवं समष्टि में समान रूप से इसका प्रभाव लक्षित होता है। **'अजपा'-विज्ञान** सम्यक् प्रकार से समझ लेने पर **'तत्त्व-ज्ञान'** का पूर्णोदय अवश्यम्भावी है। जिस प्रकार यह साधना स्वाभाविक है, उसी प्रकार इसका फल भी स्वाभाविक है। अर्थात् स्वभाव से ही **सिद्धि-लाभ** होता है।

विभिन्न सम्प्रदायों में 'अजपा'-साधना की महिमा

भगवान् बुद्धदेव ने अति प्राचीन काल में **'आनापान सति'** नाम की साधना अपने अन्तरङ्ग भक्त-जनों के बीच प्रचारित की थी। वह साधना **अजपा-साधन** का ही एक अङ्ग मात्र है, ऐसा विदित होता है। परवर्ती बौद्धाचार्य-गणों ने अनेक स्थानों पर इसकी चर्चा एवं

विस्तार-पूर्वक इसका विश्लेषण भी किया है। **श्री गोरक्षनाथ** और अन्यान्य योगी-गण भी **'अजपा'-साधन** की महिमा जानते थे। स्थान-स्थान पर इस साधन से सिद्धि प्राप्त कर मुक्त कण्ठ से इसकी महिमा उन्होंने उद्‌घोषित की है। **नाथ-सम्प्रदाय** के साहित्य में अनेक स्थानों पर **'अजपा'-जप** के माहात्म्य के सम्बन्ध में भूरि-भूरि प्रमाण विद्यमान हैं।

किंवदन्ती है कि **महा-योगी नानक साहब** ने **राजा शिवनाथ** को उसके अधिकार के अनुरूप क्रमशः उपदेश दिए हैं। उस उपदेश-परम्परा के मध्य प्रथम **'राम'-नाम,** उसके बाद **'प्रणव'** (ॐ) एवं अन्त में **'हंस-रूप' —'अजपा मन्त्र'** का उल्लेख भी देखा जाता है। **'अजपा'-गायत्री, 'हंस'-विद्या, 'आत्म'-मन्त्र, 'प्राण'-यज्ञ** आदि विविध नामों से वैदिक, पौराणिक और तान्त्रिक साहित्य में यही साधना निर्दिष्ट हुई है।

महा-प्रभु श्री चैतन्य देव, रामानन्द-स्वरूप दामोदर, शिखी माईती आदि ने **'अजपा के गुह्य विधान'** का उपदेश किया है। **सन्त कबीर, तुलसीदास** आदि महा-जनों की सिद्धि के मूल में इस साधना का अनुष्ठान विद्यमान रहा है। **स्वामी ब्रह्मानन्द ब्रह्मचारी, महा-योगी लोकनाथ** आदि सभी इस साधना के मर्मज्ञ थे।

'अजपा-साधन' अनादि काल से प्रचलित रहा है। **सदाशिव, ब्रह्मा, नारद, वशिष्ठ, ध्रुव, प्रह्लाद** आदि इस साधना को प्राप्त हुए थे। इस साधना के **आदि-गुरु श्री भगवान्** स्वयं हैं, इस सम्बन्ध में लेश-मात्र सन्देह नहीं।

मनुष्य का स्वाभाविक जप—'अजपा'

शिशु जब मातृ-गर्भ से निष्क्रान्त होता है, जब उसका नाड़ीच्छेद होता है, तभी से उसके देह में श्वास-प्रश्वास की क्रिया लक्षित होती है। मातृ-गर्भ में शिशु का श्वास-प्रश्वास गर्भ-धारिणी जननी से पृथक् नहीं रहता। गर्भस्थ शिशु माँ के आहार से ही पुष्टि-लाभ करता है एवं माँ के श्वास-प्रश्वास से उसके देह का विकास होता है। किन्तु प्रसव के साथ ही वैष्णवी माया उस पर आक्रमण करती है, तब से वह वस्तुतः काल-राज्य में वास करना आरम्भ करता है। शिशु जो प्रथम श्वास ग्रहण करता है उसका नाम **'जन्म'** एवं इस श्वास का शेष-त्याग ही **'मृत्यु'** नाम से प्रसिद्ध है। जन्म से मृत्यु-पर्यन्त मध्यवर्ती अवस्था उसका **'जीवन'** है। इसलिए मनुष्य का समग्र जीवन ही **श्वास-प्रश्वास-मय** है। मनुष्य आत्म-विस्मृत अवस्था में **श्वास-प्रश्वास के अधीन** रहता है एवं निरन्तर काल की प्रेरणा से **'इड़ा'** और **'पिङ्गला'** नामक **वाम** और **दक्षिण मार्ग** से सञ्चरण करता रहता है।

मूल में **अविद्या**-रूपी पर्दा न रहने से **विक्षेप-रूपी श्वास-प्रश्वास की क्रिया** भी नहीं रहती। वास्तविक रूप में **श्वास-प्रश्वास— काल की ही क्रीड़ा** है एवं जिसे हम **जीवन** कहते हैं, वह **काल के प्रकाश की महिमा** मात्र है।

योगी-गण कहते हैं कि **योग-पथ में मुख्य नौ अन्तराय** हैं—सभी चित्त के **विक्षेप**-स्वरूप हैं। चित्त के विक्षेप के साथ-साथ ये सब विद्यमान रहते हैं—१ **व्याधि** (चित्त की अकर्मण्यता), २ **संशय,** ३ **प्रमाद** (साधना या आध्यात्मिक अनुष्ठान का अभाव), ४ **देह और चित्त का अलस भाव,** ५ **अविरति** (विषय-तृष्णा), ६ **भ्रान्ति** (मिथ्या ज्ञान, समाधि की भूमि का न

होना एवं भूमि-लाभ होने पर भी उसमें प्रतिष्ठित न हो पाना), ७ **दुःख**, ८ **इच्छा की अपूर्णतावश चित्त का क्षोभ**, ९ **देह का कम्पन** और **श्वास-प्रश्वास**।

उक्त विवरण से समझ में आता है कि **श्वास-प्रश्वास मूल रोग नहीं** है। यह रोग का उपसर्ग मात्र है। मूल रोग अर्थात् **'चित्त-विक्षोभ'** के साथ ही **श्वास-प्रश्वास** भी आयत्त हो जाता है। **चित्त का विक्षोभ ही श्वास-प्रश्वास का मूल** है। एवं **विक्षेप का मूल प्रत्यक् चैतन्य की अनुपलब्धि** अर्थात् **साक्षात्कारात्मक ज्ञान का अभाव**। जिस उपाय के द्वारा **प्रत्यगात्मा का साक्षात्कार** होता है, उसी के प्रभाव से **श्वास-प्रश्वास-रूप काल की क्रीड़ा** भी शान्त हो जाती है। **आत्म-ज्ञान** का मुख्य हेतु समझकर ही **'प्रणव'-जप** एवं **'प्रणव'**-वाच्य ईश्वर की भावना को योगी-गणों ने ग्रहण किया है। **'प्रणव'-जप** का रहस्य अवगत होने से समझ में आता है कि **'अजपा-जप' ही श्रेष्ठ जप** है। अन्य सकल जप चरम अवस्था में **'अजपा'** में ही पर्यवसित होते हैं। यही मनुष्य का **स्वाभाविक जप** है।

एक अहोरात्र में मनुष्य के **स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास की संख्या** २१,६०० मान ली गई है। अवस्था-भेद से इसका किंचित् तारतम्य रहने पर भी यह साधारण नियम है। श्वास बाहर होता है **'हं'**-ध्वनि करते हुए, इसका नाम निःश्वास है एवं पुनः भीतर प्रवेश करता है **'सः'**-ध्वनि करते हुए, इसका नाम है प्रश्वास— **'हं-कारेण बहिर्याति, सः कारेण विशेत् पुनः।'** साधक **कवि रामप्रसाद** ने गाया है—

हं वर्ण पूरके हय 'सः' वर्ण रेचक हय, अहर्निशि करे जप 'हंसः हंसः' बलिया।

प्राण-अपान का समन्वय—'अजपा-जप'

योगी-गण कहते हैं कि जीव निरन्तर **श्वास-प्रश्वास** के बहाने उक्त **'हंस'**-मन्त्र या **अजपा-गायत्री का जप** करता है। जीव मात्र इसे करता है, अतएव मनुष्य भी करता है। किन्तु इतर जीव से मनुष्य का पार्थक्य है कि मनुष्य अपने पुरुषाकार द्वारा ऐसी सामर्थ्य अर्जन कर सकता है कि जिसके फल-स्वरूप **श्वास-प्रश्वास** की **स्वाभाविक गति से विपर्यय** सम्भव हो सकता है—दूसरे शब्दों में मनुष्य साधना के बल से **'हंस'**-गति को **'सोहं'**-गति में परिवर्तित कर सकता है। तब **आत्म-ज्ञान का पथ** प्रशस्त हो जाता है एवं **इड़ा-पिङ्गला** में प्रवाहशील वायु की वक्र-गति **'सुषुम्ना'** में सरल गति-रूप से परिणत होती है। **'सुषुम्ना'— 'ब्रह्म-मार्ग'** है। वायु **'इड़ा-पिङ्गला'** के मार्ग से आकृष्ट होकर जिस परिमाण में **'सुषुम्ना'** में प्रविष्ट होती है, उसी परिमाण में **'विकल्प'** का उपशम घटता है और **'निर्विकल्प आत्म-ज्ञान'** का अवरुद्ध पथ (द्वार) धीरे-धीरे उन्मुक्त होता है। **'सुषुम्ना'** में प्रवेश न करने से वायु और मन की ऊर्ध्व-गति सम्भव नहीं होती एवं ऊर्ध्व-गति व्यतिरेक **(विकार)** को त्याग कर **चित्त** साम्य-भाव में स्थिति-लाभ नहीं कर सकता। योगी-गण जिसे **'कुम्भक'** कहते हैं, वह इस ऊर्ध्व-गति के फल-स्वरूप क्रमशः सिद्ध होता है। वस्तुतः **'कुम्भक'** के मध्य गति रहती अवश्य है किन्तु वक्र-गति परित्यक्त होकर **अन्तर्मुखी सरल गति** की सूचना होती है। इसी **सरल गति** से अन्त में **गति-हीन अवस्था का आभास** प्राप्त होता है, जिसे हम सामान्य भाषा में **'प्राण'-'अपान' का व्यापार** कहते हैं, उसी को योगी की भाषा में **'हंस'** मन्त्र का उच्चारण समझना चाहिए।

इस प्रकार **विषम गति** का कारण खोजने पर जाना जाता है कि प्रकृति के भीतर ही इस वैषम्य का बीज निहित है। **'प्राण'—'अपान'** को एवं **'अपान'—'प्राण'** को निरन्तर आकर्षित करता है किन्तु दोनों की स्वाभाविक गति परस्पर-विरुद्ध है। **'प्राण'** जिस ओर सञ्चारित होता है; **'अपान'** उसकी विपरीत दिशा में सञ्चारित होता है। यदि वे अन्य-निरपेक्ष होते, तो विरोध की कोई सम्भावना नहीं रहती। किन्तु ऐसा नहीं है। **'अपान'** के न होने से **'प्राण'** का कार्य नहीं चलता। इसलिए **'प्राण'—'अपान'** को चाहता है, उसे आकर्षित करता है। **'प्राण'** के न रहने से **'अपान'** का कार्य नहीं चलता। अतएव **'अपान'—'प्राण'** को आकर्षित करता है। इससे स्पष्ट होता है कि प्रकृत (वास्तविक) साम्य अवस्था से च्युत होकर ही, इन दोनों के मध्य विरुद्ध गति का उदय हुआ है। **'प्राण'** और **'अपान'** विरुद्ध सञ्चारी होकर, अविरुद्ध साम्य भाव में पुनः प्रतिष्ठित होना चाहते हैं। जब तक यह नहीं घटता, तब तक **शान्ति की सम्भावना** नहीं है। **बद्ध जीव,** इस सङ्घर्ष में उठता-गिरता है; **वाम** और **दक्षिण पथ** में सञ्चरण करता है। इसमें विश्राम नहीं है। योगी का लक्ष्य इन दो विरुद्ध गतियों का समन्वय सिद्ध करना है।

'प्राण-अपान' की देह-गत और काल-गत वैषम्य-गति

'प्राण-अपान' की वैषम्य गति के दो प्रकार हैं—१ **देह-गत** और २ **काल-गत**। नासा-पुट से श्वास बाहर प्रवाहित होता है एवं बाहर से भीतर की ओर प्रत्यावृत्त होता है। इस बहिर्गति की एक सीमा है। साधारण अवस्था में यह बाह्य-गति नासा-पुट से **द्वादशांगुल** पर्यन्त लक्षित होती है। देह की विशिष्ट स्थितियों में यह गति घटती-बढ़ती है। यथा—भोजन और वाक्यालाप में बहिर्गति की वृद्धि ६ से १२ अंगुल, गमन में १२ से २४ अंगुल, द्रुत-वेग से धाव-मान होने से ३० से ४२ अंगुल एवं स्त्री-सङ्ग में ५३ से ६५ अंगुल होती है। प्रकृति की विचित्रता के कारण से भी विभिन्न व्यक्तियों की श्वास-गति में कुछ-कुछ भेद होता है। गति का विस्तार जितना अधिक होगा, बहिर्मुखता और काल का प्रभाव भी उतना अधिक जानना चाहिए। संयत जीवन के अभ्यास के फल-स्वरूप क्रमशः इस बहिर्गति का ह्रास हो जाता है।

काल-गत वैषम्य का परिचय एक निर्दिष्ट काल की श्वास-संख्या से मिलता है। यहाँ श्वास का अर्थ **पूरक** और **रेचक** दोनों है। साधारणतः एक मिनट में स्वस्थ मनुष्य का **१५ बार श्वासोच्छ्वास** होता है। दूसरे शब्दों में **१५ बार श्वास भीतर** और **१५ बार श्वास बाहर** होता है। कुछ विशेष स्थितियों में, प्रकृति की विचित्रता से यह संख्या घटती-बढ़ती है जैसा कि देह-गत विषम गति के विवरण से स्पष्ट होता है। किन्तु यह घटना-बढ़ना नाम मात्र का होता है। **संयम** और **अभ्यास** के प्रभाव से इस संख्या का धीरे-धीरे ह्रास सम्भव है।

श्वास की बाह्योन्मुखता और संख्या के मध्य परस्पर सम्बन्ध है। साधारणतः बाह्य-गति १२ अंगुल होने से श्वासोच्छ्वास की संख्या १५ होती है। **योगाभ्यास** या **विशिष्ट शक्ति के प्रभाव** से, बाह्य-गति कम होने से संख्या भी तदनुपात में कम होती है। दूसरे शब्दों में श्वास के देह-गत सम्बन्ध और काल-गत सम्बन्ध सम-भाव से एक साथ शिथिलता को प्राप्त होते

हैं। बाह्य-गति एक अंगुल कम होने से संख्या सवा दो कम होती है। दो अंगुल कम होने से, संख्या ढाई कम होती है। अन्त में जब बाह्य-गति १२ अंगुल कम होती है, तब संख्या भी पन्द्रह से शून्य में पर्यवसित होती है। अतएव श्वास का देह-गत और काल-गत सम्बन्ध एक ही समय विच्छिन्न होता है। इस अवस्था में श्वास का स्थूल सञ्चार रुद्ध होता है। **'रेचक-पूरक'**-रूपी व्यापार शान्त होता है। इसी का नाम **'कुम्भक'** है। यहीं से पूर्ण समाधान का मार्ग उन्मुक्त होता है। यह समाधान ही स्थिति है; जब पूर्व-वर्णित **विक्षेप का उपशम** होता है, इसके पहिले नहीं।

प्राण की बाह्य-गति या संख्या के न्यून होने से नाना प्रकार की **अलौकिक शक्ति का विकास** होता है। सर्व-प्रथम **वासना का त्याग** होता है, कारण **प्राण की चञ्चलता** से ही **वासना का उद्‌भव** होता है। **निष्काम भाव की अभिव्यक्ति** के बाद, **आनन्द की अभिव्यक्ति** स्वाभाविक है। इसीलिए **गीता** में **भगवान् श्रीकृष्ण** ने कहा है—**'अशान्तस्य कुतः सुखम्।'** शान्ति के नहीं होने से **वास्तविक सुख का आविर्भाव** नहीं होता है। इसके बाद ही **वाक्-सिद्धि, दूर-दृष्टि, आकाश-गमन, छाया-नाश** एवं **निर्वाण** तक प्राप्त होता है। यही साधना का सिद्धान्त-रहस्य है।

संक्षेप में **प्राण की बाह्य-गति का उपशम** ही साधना का उद्देश्य है। **चिन्ता** और **बाह्य आचरण द्वारा बाह्य-गति की वृद्धि** होती है। साधना-क्षेत्र में यह वर्जनीय है। **संयम का अभ्यास** परमावश्यक है।

'अजपा'-साधना-तत्त्व

'अजपा'— आत्म-मन्त्र है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति—इन तीनों अवस्थाओं में जीवात्मा वस्तुतः परमात्मा से अभिन्न है। यही महा-तत्त्व **अजपा-मन्त्र** का प्रतिपाद्य है।

'अजपा मन्त्र' के ऋषि **ब्रह्मा,** छन्द **गायत्री,** देवता **आत्मा,** शक्ति **'स'** और बीज **'ह'** है। **विद्या** या **संविद्-रूपिणी शक्ति** ही मन्त्रात्मा है, यह **'स'**-कार का वाच्यार्थ है। उक्त शक्ति का प्रतिपाद्य **निष्कल पर-शिव** है, यह **'ह'**-कार का वाच्यार्थ है। इस प्रकार शब्दात्मक **शक्ति** और **बीज** अर्थात् **'स'** और **'ह'**—ये दोनों **सकल** और **निष्कल** स्वरूप के प्रतिपादक हैं।

सत्य-ज्ञानादि लक्षणों से युक्त निरुपाधिक **स्व-प्रतिष्ठ अन्तरात्मा-रूपी चैतन्य ही पर-शिव** है। **'अहं'** शब्द से **अन्तरात्मा— प्रत्यगात्मा** समझा जाता है। उसके द्वारा **पर-शिव** का ही प्रकाश होता है। जब **शिव-स्वरूप** निज **माया** के द्वारा स्वयं अपना प्रतियोगी या प्रतिद्वन्द्वी उद्‌भावित करता है, तब यह प्रतिद्वन्द्वी उसका द्वितीय रूप होता है। इसे **'शक्ति'** कहते हैं। **अजपा-मन्त्र** में जो **'सः'**-कार है, वह इस शक्ति का द्योतक है। **'ह'**—पुरुष का द्योतक है। इस प्रकार यह मन्त्र **शिव** और **शक्ति** उभयात्मक है। **'प्रपञ्च-सार तन्त्र'** में **भगवान् शङ्कराचार्य** कहते हैं—

'ह-कारः पुरुषः प्रोक्तं, स इति प्रकृतिर्मता। पुं-प्रकृत्यात्मको हंसः, तदात्मकमिदं जगत्।'

जिस प्रकार श्येन पक्षी ऊर्ध्व आकाश में उड़ते हुए भी गुण-बद्ध रहने के कारण पृथ्वी की तरफ आकृष्ट होता है, उसी प्रकार **प्राण** और **अपान** की क्रिया के वशीभूत होकर जीव ऊर्ध्व और अधः गति प्राप्त करता है। प्राणी मात्र के हृदय में **अव्याकृत आकाश** है, उसी से **लिङ्ग शरीर** प्रतिष्ठित है। इसी का प्रतिलोम-स्वरूप **'हंसः'** गति होती है। साधक अपनी **आत्मा का ध्यान** कर, **जीवत्व का परिहार** करते हुए, **'ह'**-कारात्मक **परमात्म-भाव की प्राप्ति** कर सकता है।

दूसरे मत से, **'हंस'** प्रत्यक् आत्मा अथवा समष्टि-तुरीय को समझा जाता है। व्यष्टि-तुरीय और समष्टि-तुरीय के परस्पर युक्त होने पर **'हंस-योग'** निष्पन्न होता है।

उपनिषदों में 'अजपा'-साधना

उपनिषदों में **'अजपा'**-साधन का विवरण दिया है। उपनिषदों के अनुसार **प्रत्यगात्मा का ज्ञान** प्राप्त होना ही **'हंस'**-ज्ञान है। जो **अजपा-साधन** में अग्रसर होते हैं, उन्हें पहले **सिद्धासन** में बैठकर वाम-गुल्फ द्वारा गुह्य-स्थान के आवेष्टन के साथ **पूरक-क्रिया** करनी होती है। इससे **'मूलाधार'** में वायु सञ्चित होती है। फिर निज-शक्ति के अनुसार आकुञ्चन-क्रिया द्वारा **'मूलाधार'** से इस वायु को उठाना होता है। यहाँ तक क्रिया-सिद्ध होने पर **'प्राण'** और **'अपान'** का **साम्य-स्थापन** करना होता है। **'प्राण'** और **'अपान'** का साम्य होने से **मूलाधार**-स्थित **त्रिकोण** में जो **अग्नि** है, उसे उठाकर **'प्राण'-'अपान'** के साथ युक्त करने से **कुण्डलिनी-शक्ति** जाग उठती है। यही **'ब्रह्म-ग्रन्थि'** का भेदन है।

इस ग्रन्थि का भेदन न होने तक प्रथम चक्र **'मूलाधार'** में प्रवेश करने की सामर्थ्य नहीं होती। इसलिए **'मूलाधार'** के **चतुर्दल कमल** में प्रविष्ट होकर इस कमल का, **तुरीय-भूमि** का ध्यान करना होता है। इसी को **'विराट् का ध्यान'** कहते हैं। इस **'ध्यान'** के फल-स्वरूप **ऊर्ध्व-गति** होती है।

तब षड्-दल **'स्वाधिष्ठान'**-चक्र की तीन बार प्रदक्षिणा कर दश-दल **'मणिपुर'** में गमन करना होता है। यहाँ पुनः **ग्रन्थि-भेदन** होता है, जिसे **'विष्णु-ग्रन्थि' का भेदन** कहते हैं। यह ग्रन्थि **'अनाहत-चक्र'** के नीचे अवस्थित है। इसका भेदन न कर सकने से **'हृदय'-चक्र** में प्रवेश नहीं मिलता।

'हृदय'-चक्र में प्रवेश कर **हृदय-चक्र स्थित मध्य-विन्दु में तुरीय ध्यान** करना होता है। यह **'सूत्रात्मा का ध्यान'** है। इस समय **सविकल्प समाधि** का उदय होता है। **'अनाहत-चक्र'** का अतिक्रमण कर **'विशुद्ध-चक्र'** में प्रवेश करने का मार्ग, स्तन-वत् लम्बमान दो मांस-पिण्डों के रूप में दृष्टि-गोचर होता है। तब पार्श्वस्थ दो पथ त्यागकर मध्य-पथ का आश्रय ले **'विशुद्ध'-चक्र** में प्रवेश करना होता है। वहाँ प्राण निरुद्ध होते हैं।

इसके बाद अन्तिम ग्रन्थि का भेदन कर **'आज्ञा-चक्र'** में प्रवेश होता है। इस ग्रन्थि का नाम **'रुद्र-ग्रन्थि'** है। यह **आज्ञा-चक्र** के नीचे अवस्थित है। **'आज्ञा-चक्र'** में प्रवेश कर वहाँ **तुरीय-ध्यान** करने से **चन्द्र, सूर्य** और **अग्नि**—इन तीनों तेजों की सम्मिलित सामर्थ्य प्राप्त होती है, जिससे एक **महा-तेज का विकास** होता है।

उक्त **महा-तेज** के फल-स्वरूप **'सहस्रार'** से क्षरित **अमृत** के आस्वादन का अधिकार मिलता है। अजर, अमर पिण्ड को प्राप्त होकर **'सहस्रार'**-शोभी **ब्रह्म-रन्ध्र** में प्रवेश करता है। वहाँ **तुर्य** या **तुर्य-तुर्य** का अपरोक्ष दर्शन घटित होता है। **तुर्य** अर्थात् जिसके ऊपर तीन मात्राएँ आरोपित होती हैं, उसके लुप्त हो जाने के बाद **चतुर्थ** का बोध होता है। तब निज को **त्रि-मात्र की प्रतीति** होती है। यही **अमात्र-दशा** है। यही प्रतिद्वन्द्वी-हीन **'एक'** और **अद्वय स्थिति** है। इसी का नाम **'परम-हंस'**-अवस्था है।

(क्रमशः)

परा-वाणी आध्यात्मिक शोध-संस्थान द्वारा प्रचारित उपयोगी प्रकाशन

शक्ति-सङ्गम-तन्त्र [काली-खण्ड] १०)

शक्ति-तत्त्व १५)

शाक्त-सम्प्रदाय की उपास्य देवता 'शक्ति' का तात्त्विक रहस्य अति गूढ़ रहा है। उसे स्पष्ट करने की चेष्टा समय-समय पर विद्वज्जनों द्वारा की गई है। इस चेष्टा के फल-स्वरूप अनेक शिक्षा-प्रद निबन्ध प्रकाश में आए हैं। प्रस्तुत संग्रह में ऐसे ही कुछ चुने हुए निबन्धों का सङ्कलन किया गया है।

शक्ति-पीठ काशी १०)

पञ्च-कोशी, देवी-पीठ, भैरव-यात्रा-सहित।

शाबर-मन्त्र-संग्रह [बारह भाग] २९०)

शाक्त धर्म क्या है ? १५)

शिव-महिम्न स्तोत्र ६)

शिव-शक्ति-अङ्क ४०)

'चण्डी'-पत्रिका का उपयोगी अङ्क।

श्रीललिता-त्रि-शती २०)

साधना-क्रम, व्याख्या-सहित मूल-पाठ।

श्रीचक्र-रहस्य २०)

श्रीविद्या-स्तोत्र पञ्चकम् ३५)

श्रीविद्या-सपर्या-वासना ६५)

श्रीत्रिपुरा महोपनिषद् ६)

श्री श्रीविद्या-नित्यार्चन यन्त्रस्थ

श्री श्रीविद्या-स्तव-मञ्जरी ३०)

श्रीषष्ठी देवी चालीसा ५)

सन्तान-सुख-प्राप्ति के प्रयोग ६)

सप्तशती-सूक्त-रहस्य ३०)

सप्तशती के विविध सूक्तों (रात्रि-सूक्त, शक्रादि-स्तुति, श्रीनारायणी-स्तुति, श्री देवी-उक्ति, देवी-सूक्त) व 'श्रीत देवी-सूक्त' की दार्शनिक व्याख्या।

सम्पादक के संस्मरण ५०)

सौन्दर्य-लहरी [पद्यानुवाद] १०)

सविधि श्रीललिता-सहस्र-नाम यन्त्रस्थ

सविधि श्रीरुद्र-चण्डी ६)

रुद्रयामल तन्त्र का चमत्कारी सप्तशती-पाठ।

सांख्यायन तन्त्र [हिन्दी सारांश सहित] ३५)

भगवती बगला के साधकों के लिए उपयोगी तन्त्र

साधना रहस्य यन्त्रस्थ

हठ-योग ४)

हिन्दी कामाख्या तन्त्र, पुरश्चरण-रसोल्लास १५)

हिन्दी कुलार्णव तन्त्र ३०)

'तन्त्र'-साहित्य में 'कुलार्णव' सबसे अधिक प्राय: उद्धृत किया जानेवाला ग्रन्थ है। इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए इसका विस्तृत हिन्दी-रूपान्तर प्रकाशित किया गया है। प्रत्येक विषय को स्पष्ट रूप में प्रस्तुत किया गया है।

हिन्दी कौलावली-निर्णय २५)

हिन्दी तन्त्र-सार [सजिल्द] २००)

हिन्दी प्राण-तोषिणी तन्त्र ७५)

हिन्दी महा-निर्वाण तन्त्र ४०)

तान्त्रिक-साधना के सम्बन्ध में 'महा-निर्वाण तन्त्र' एक श्रेष्ठ शिक्षा-प्रद ग्रन्थ है। प्रत्येक 'तन्त्र'-प्रेमी बन्धु को इस ग्रन्थ का अध्ययन अवश्य करना चाहिए। हमारे इस विस्तृत हिन्दी अनुवाद द्वारा जिज्ञासु बन्धु इस ग्रन्थ का अध्ययन कर सकते हैं।

हिन्दी शाक्तानन्द-तरङ्गिणी १५)

हिन्दुओं की पोथी २५)

होलिका-महिमा एवं पूजन-विधि ४)

होमेज टू एनसेस्टर्स (पितृ-पूजा) २०)

ज्ञान-सङ्कलिनी तन्त्र ५)

वाइन टु वीमेन [अंग्रेजी में] ३)

आगमोक्त योग-साधना [अंग्रेजी में] ५)

कल्याण मन्दिर प्रकाशन, अलोपी-देवी मार्ग, प्रयाग-राज (उ० प्र०) ☎ : ५०२७८३

रजि०सं० ए०डी० ६१ जुलाई, २००० रजि० सं० ३२९८१/५७

'रास-लीला'

राजा परीक्षित ने जब **श्रीशुकदेव जी** से पूछा कि **'हे महा-मुने!** किस प्रकार **सर्व-शक्ति-घन अव्यय भगवान्** अपनी **विभूति** में ही **क्रीड़ा** करते हुए **परा (अक्षर)** एवं **अपरा (क्षर) शक्ति** के द्वारा **विश्व** की **उत्पत्ति-स्थिति-लय** के अवलम्बन बना करते हैं।' तब **श्रीशुकदेव जी** ने उन्हें **'रास-लीला'** का उपदेश दिया।

महा-रास अर्थात् **काम-देव** का प्रत्यक्ष **दर्प-दलन**

सम्पादक/प्रकाशक/मुद्रक : श्री ऋतशील शर्मा, चण्डी-धाम, प्रयागराज-६ ✆ : ५०२७८३